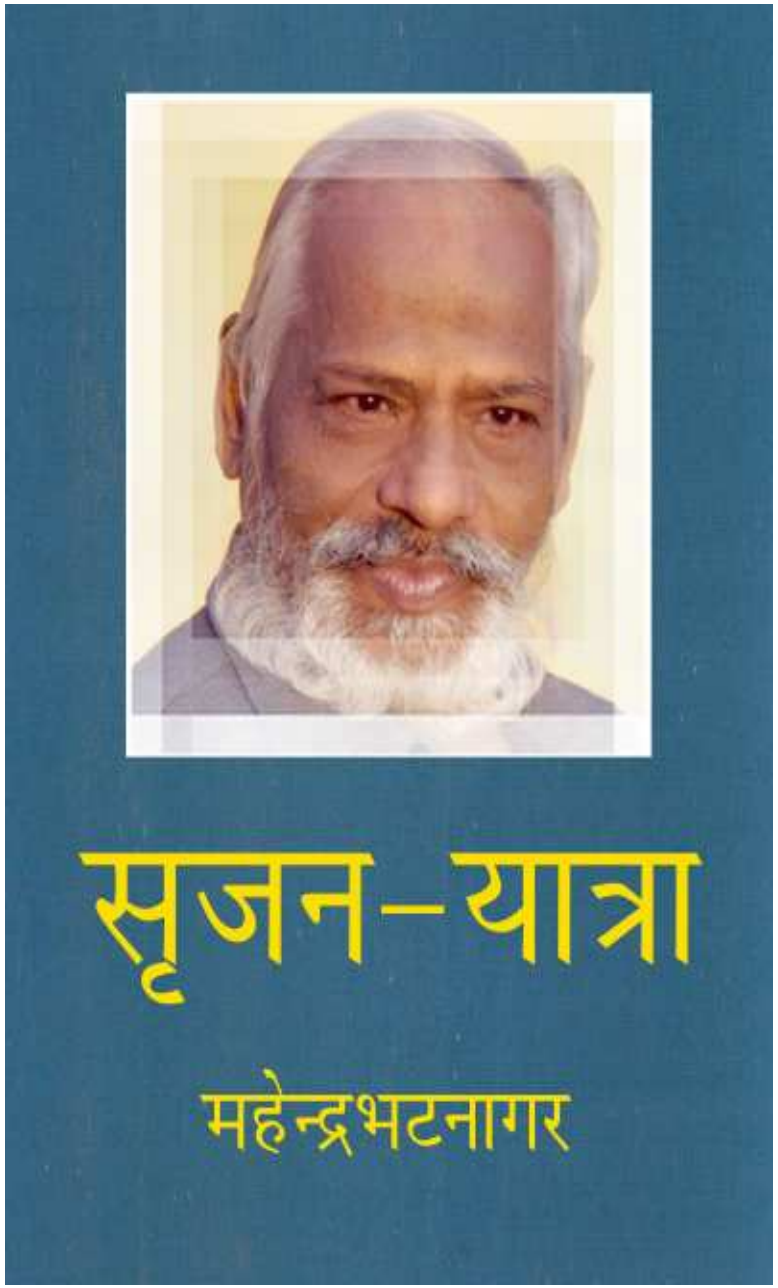
सृजन-यात्रा
महेन्द्रभटनागर

सृजन-यात्रा : महेंद्रभटनागर

(कविता-संचयिता)

卐

प्रकाशक

इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स

166-डी, कमलानगर, दिल्ली - 110007

अनुक्रम

अभिमत : महेंद्रभटनागर की कविता
डॉ. शिवकुमार मिश्र

卐

सामाजिक यथार्थ की कविताएँ

1 दो ध्रुव / 2 (18)
2 विपत्तिग्रस्त / 3
3 दृष्टि / 4
4 परिवर्तन / 5
5 सुखद / 6
6 अद्‌भुत / 7
7 स्वप्न / 8
8 अनुभव-सिद्ध / 10
9 सावधान / 11
10 अदम्य / 12
11 संकल्पित / 14
12 सार्थकता / 16
13 संग्राम; और / 17
14 अमानुषिक / 19
15 इतिहास का एक पृष्ठ / 20
16 आतंक के घेरे में / 22
17 अग्नि-परीक्षा / 23
18 नये इंसानों से / 25
19 दूसरा मन्वन्तर / 27
20 इतिहास स्रष्टाओ! / 29
21 प्रतिरोध / 31
22 विचित्र / 32

23 संक्रमण / 33
24 सहभाव / 34
25 अन्तर्ध्वन्सक / 35
26 अब नहीं / 37
27 हमारे इर्द-गिर्द / 38
28 वर्तमान / 40
29 परिणति / 41
30 प्रतिबद्ध / 42
31 नवोन्मेष / 43
32 अंधकार / 44
33 आलोक / 45
34 दीप जलता है! / 46
35 आज की ज़िंदगी / 47
36 मध्य-वर्ग - 1 / 48
37 मध्य-वर्ग - 2 / 49
38 भविष्यत् / 50
39 लेखनी से – / 51
40 निश्चय / 52
41 बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे! / 53
42 काटो धान / 55
43 मुख को छिपाती रही / 58
44 अजेय / 59
45 पहली बार / 60
46 ज़िंदगी कैसे बदलती है! / 63
47 नयी नारी / 64
48 मशाल / 66
49 ग्रीष्म / 67
50 नारी / 68

जीवन-राग

51 यथार्थ / 70
52 लमहा / 71
53 नहीं / 72
54 अपेक्षा / 73

55 चिर-वंचित / 74
56 जीवन्त / 75
57 पूर्वाभास / 76
58 सार-तत्त्व / 77
59 अनुभूति / 79
60 बोध-प्राप्ति / 81
61 जीवन / 82
62 एकाकी / 83
63 खंडित मन / 84
64 संन्यास-चेतना / 85
65 संबंध / 86
66 सहवर्ती / 87
67 अंतिम अनुरोध / 88
68 अभिप्रेत / 89
69 वास्तविकता / 90
70 विराम - 1 / 91
71 विराम - 2 / 92
72 सच है – / 93
73 आत्म-संवेदन / 94
74 सामना / 95
75 जीने के लिए / 96
76 आग्रह / 97
77 शुभैषी / 98
78 कामना / 99
79 चरम-बिन्दु / 101
80 महत्त्वपूर्ण / 102
81 विश्लेषण / 104
82 एक साध अधूरी / 106
83 कश-म-कश / 108
84 निष्कर्ष / 109
85 संधान / 110
86 बाधाएँ : चुनौती हैं! / 111
87 पुनर्वार / 113

88 अपेक्षित / 115
89 अनुदर्शन / 116
90 वेदना : एक दृष्टिकोण / 117
91 ओ, भवितव्य के अश्वो! / 119
92 आस्था / 121
93 आस्था का उपहार / 122
94 आदमी और स्वप्न / 123
95 जीवन : एक अनुभूति / 125
96 गाओ / 127
97 हिम्मत न हारो! / 128
98 संकल्प-विकल्प / 129
99 परिचय / 131
100 स्थितियाँ और द्वन्द्व / 132

प्रणय / प्रेम की कविताएँ

101 राग-संवेदन - 1 / 134
102 राग-संवेदन - 2 / 135
103 जिजीविषु / 136
104 निष्कर्ष / 137
105 तुम .... / 138
106 एक रात / 139
107 सहसा / 140
108 आमने-सामने / 141
109 बस, एक बार / 142
110 निकष / 143
111 पुनरपि / 144
112 तिघिरा की एक शाम - 1 / 146
113 तिघिरा की एक शाम - 2 / 147
114 जिजीविषु / 148
115 प्रधूपिता से – / 149
116 निवेदन / 150
117 कौन हो तुम / 151
118 स्वीकार लो! / 152

119 अभिरमण / 153
120 कौन तुम / 155
121 हे विधना / 156
122 मोह-माया / 157
123 रात बीती / 158
124 अगहन की रात / 159
125 प्रतीक्षा / 160
126 साध / 161
127 अब नहीं / 162
128 दीया जलाओ / 163
129 जिजीविषा / 165
130 कौन हो तुम? / 166
131 चाँद से / 167
132 चाँद सोता है / 168
133 विश्वास / 169
134 कोई शिकायत नहीं / 170
135 विरह का गान / 171
136 दीप जला दो / 172
137 धन्यवाद / 173
138 मिल गए थे हम / 175
139 ग्रहण / 176
140 विवशता / 177
141 मृग-तृष्णा / 178
142 चाँद और पत्थर - 1 / 179
143 चाँद और पत्थर - 2 / 180
144 न जाने क्यों / 181
145 साथ / 182
146 चाँद, मेरे प्यार! / 183
147 दुराव / 185
148 यह न समझो ... / 186
149 तुम्हारी माँग का कुंकुम / 187
150 प्रेय / 188

प्रकृति-प्रेम की कविताएँ

151 आसक्ति / 190
152 अभिलषित / 191
153 पातालपानी की उपत्यका से / 193
154 गौरैया / 194
155 आह्लाद / 197
156 उमंग / 198
157 बरखा की रात / 199
158 मेघ-गीत / 200
159 शिशिर की रात / 202
160 शीतार्द्र / 203
161 हेमन्त / 204
162 हेमन्ती धूप / 205
163 री हवा! / 206
164 अनुभूत : अस्पर्शित / 207
165 बसंत / 208
166 मंत्र-मुग्ध / 209
167 कचनार / 210
168 स्वर्ण की सौगात / 211
169 उषा रानी / 212
170 सुहानी सुबह / 213
171 भोर होती है / 214
172 साँझ / 215
173 माँझी / 217
174 रात / 218
175 ज्योत्सना / 219

मृत्यु-बोध : जीवन-बोध

176 आभार / 222
177 आभार; पुनः / 223
178 पहेली / 224
179 सचाई / 225

180 जन्म-मृत्यु / 227
181 युग्म / 229
182 वास्तव / 230
183 प्रयोगरत / 231
184 प्रार्थना / 232
185 संकल्प / 233
186 जयघोष / 234
187 आह्वान / 235
188 एक दिन / 236
189 साम्य / 237
190 दह्शतअंगेज़ / 238
191 आमंत्रण / 239
192 मृत्यु-परी से — / 240
193 निवेदन / 241
194 अन्तर / 242
195 अन्त / 243
196 सत्य / 244
197 नमन / 245
198 अलविदा! / 246
199 निश्चिति / 247
200 मृत्यु-पत्र / 248

जीवन-त्रासदी

201 विडम्बना / 250
202 परिणाम / 250
203 यथावत् / 250
204 अप्राप्य / 250
205 कहाँ जाएँ? / 251
206 विवश / 252
207 दुर्भाग्य / 253
208 वास्तविकता / 254
209 पुनः प्रारम्भ / 255
210 सत्य / 256

211 भ्रम / 257
212 आश्चर्य / 258
213 भुक्तभोगी / 259
214 तृषित / 260
215 विश्वास / 262
216 व्यतीत / 264
217 आख़िर... / 266
218 परिणाम / 267
219 प्रबोध / 268
220 परिचय / 269

डॉ. महेंद्रभटनागर
110, बलवन्त नगर, गांधी रोड,
ग्वालियर – 474002 (म. प्र.)
फ़ोन : 81 097 300 48 / 0751-409290
ई-मेल : drmahendra02@gmail.com

कवि का आग्रह है कि उसका नाम सर्वत्र 'महेन्द्रभटनागर' (एक शब्द) या 'महेन्द्र' लिखा जाए, 'भटनागर जी' कहीं नहीं।

महेंद्रभटनागर की कविता

महेंद्रभटनागर की कविताएँ एक ऐसे कवि के रचना-कर्म की फलश्रुति हैं; अपने अब-तक के आयुष्य के छह दशकों तक अपने समय से सीधे आँखें मिलाते हुए जिसने उसके एक-एक तेवर को पहचाना और शब्दों में बाँधा है। इन कविताओं में समय के बहुरूपी तेवर ही नहीं, पूरे समय के पट पर, कभी साफ़-सुथरी; परन्तु ज़्यादातर पेचीदा और गड्डमड्ड लिखी हुई उस इबारत का भी खुलासा है जिसे बड़ी शिद्दत से कवि ने पढ़ा-समझा और उसके पूरे आशयों के साथ हम सबके लिए मुहैया किया है।

छह दशकों की सृजन-यात्रा कम नहीं होती। महेन्द्रभटनागर के कवि-मन की सिफ़त इस बात में है कि लाभ-लोभ, पद-प्रतिष्ठा के सारे प्रलोभनों से अलग, अपनी विश्व-दृष्टि और अपने विचार के प्रति पूरी निष्ठा के साथ, अपनी चादर को बेदाग रखते हुए वे नई सदी की दहलीज़ तक अपने स्वप्न और अपने संकल्पों के साथ आ सके हैं।

एक लम्बे रचना-काल का साक्ष्य देती इन कविताओं में सामाजिक यथार्थ की बहु-आयामी और मनोभूमि और मनोभावनाओं की बहुरंगी प्रस्तुति है। इनमें युवा-मन की ऊर्जा, उमंग, उल्लास और ताज़गी है तो उसका अवसाद, असमंजस और बेचैनी भी। ललकार, चेतावनी, उद्‌बोधन और आह्वान है तो वयस्क मन के पके अनुभव तथा उन अनुभवों की आँच से तपी-निखरी सोच भी है। कहीं स्वरों में उद्‌घोष है तो कहीं वे संयमित हैं। समय की विरूपता, क्रूरता और विद्रूपता का कथन है तो इस सब के खिलाफ़ उठे प्रतिरोध के सशक्त स्वर भी। समय के दबाव हैं तो उनका तिरस्कार करते हुए मुखर होने वाली आस्था भी। परन्तु इन कविताओं में मूलवर्ती रूप में सारे दुख-दाह और ताप-त्रास के बीच जीवन के प्रति असीम राग की ही अभिव्यक्ति है। आदमी के भविष्य के प्रति अप्रतिहत आस्था की कविताएँ हैं ये, और इस आस्था का स्रोत है कवि का इतिहास-बोध और उससे उपजा उसका 'विज़न'। कवि के उद्‌बोधनों में, आदमी के जीवन को नरक बनाने वाली शक्तियों के प्रति उसकी ललकार में एवं आदमी के उज्ज्वल भविष्य के प्रति उसकी निष्कंप आस्था में उसके इस 'विज़न' को देखा जा सकता है।

कविता के नये-नये आन्दोलन उनकी निगाहों के सामने गुज़रते रहे हैं; परन्तु प्रगतिशील आन्दोलन के उदय के साथ उनकी रचना-धर्मिता ने जिस

जीवन-धर्मी और जन-धर्मी लय से अपना नाता जोड़ा, उम्र के आठवें दशक में पहुँचे हुए कवि की कविता में वह जीवन-धर्मी और जन-धर्मी लय अपनी पूरी ऊर्जा में जीवित है। फ़र्क इतना ही है कि उम्र के आख़िरी पड़ाव में पहुँचकर कवि ने बाहर की दुनिया के साथ-साथ अपने भीतर की दुनिया में भी झाँका है किये-धरे, जिये-भोगे का लेखा-जोखा लिया है, जो स्वाभाविक है। उम्र के इस पड़ाव पर पहुँचे हुए आदमी में जिस तरह कभी-कभार एक दार्शनिक भी बोला करता है, महेंद्रभटनागर के कवि-मन में इस दार्शनिक की पैठ और उसके कहे हुए की अनुगूँज भी कुछ कविताओं में है। महेंद्रभटनागर की कविताएँ वस्तुतः एक परिपक्व रचना-धर्मिता की उपज हैं। वे एक ऐसे रचनाकार से हमें रू-ब-रू करती हैं, जीवन के तमाम उतार-चढ़ावों से जो गुज़र चुका है, बाहर की दुनिया के साथ अपने भीतर की दुनिया को काफ़ी-कुछ थाह-परख चुका है और अब प्रकृतिस्थ होकर अनुभवों की जो राशि इस क्रम में उसे मिली है तथा जो कुछ अपने जिये-भोगे के अलावा अपने देखे-सुने और पढ़े से उसने अर्जित किया है, उसे सबको बाँट देना चाहता है कि लोग उसके बरक्स अपने बाहर-भीतर को जाँचें-परखें। ज़िंदगी के लम्बे सफ़र में जो कुछ उसे सुखद और प्रीतिकर लगा है, उसे ज़रूर पूरी शिद्दत से समेटते और बचाते हुए, अपनी स्मृतियों में सँजोए वह बार-बार जीना और पाना चाहता है। अप्रीतिकर तथा क्लेशदायक के प्रति भी उसमें आवेग या उद्वेग नहीं है, कारण वह सब भी उसके अनुभवों का हिस्सा है। परन्तु उसे बाहर की दुनिया में वितरित कर उसके भार से ज़रूर वह मुक्त होना चाहता है। उसकी जन-पक्षधरता का, उसकी जन-धर्मी चेतना का दायित्व भी है कि वह समय के उन दंशों की पीड़ा को, समय की उन विरूपताओं और विद्रूपताओं को, आदमियत के तेज़ी से हो रहे क्षरण और उससे उपजी सम्भावित विपदाओं को सामने लाये ताकि उसकी तरह बाक़ी लोग भी को जानें-पहचानें, जो उनका समय है, और उनके बरक्स उसमें अपनी और अपने हस्तक्षेप की दिशाएँ तय करें। संकलन की कुछ कविताओं में उद्बोधन के ऐसे स्वर हैं, जो ज़रूरी भी थे।

महेंद्रभटनागर की कविता की, शुरूआती दौर से ही, यह विशेषता रही है कि कविताओं में भोगे और अर्जित किये हुए अनुभव-संवेदनों को ही उन्होंने तरज़ीह दी है। किताबी, आयातित या उधार लिया हुआ, उसमें लगभग कुछ भी नहीं है, न रहा है। इसी नाते उनकी अभिव्यक्ति विश्वसनीय भी है और सहज तथा प्रकृत भी। प्रगतिशील आन्दोलन के शुरूआती दौर में जो उफ़ान और आवेग, जो लाउडनेस

कविता में थी, उनकी कविता में उसकी अनुगूँजें नहीं आयीं। न तो वे पहले लाउड थे और न ही आज हैं। रचनाधर्मी प्रयोग भी उसमें नहीं हैं। वह सीधी और सहज कविता है, फिर भी सपाट और सतही नहीं। चूँकि वह अनुभव-प्रसूत है अतएव उसमें शिल्प के बजाय बात बोली है सारगर्भित बात, जिसे किसी भंगिमा की दरकार नहीं, जो अपने कथ्य और उससे जुड़ी संवेदना के बल पर पढ़ने वाले के दिल-दिमाग़ में उतर जाती है। उसकी विशेषता उसकी प्रशांति तथा प्रांजलता है।

महेंद्रभटनागर की इन कविताओं की एक अन्य विशेषता यह भी है कि अपनी जन-धर्मिता, जीवन-धर्मिता तथा बदले और लगातार बदल रहे समय के प्रति जागरूकता बनाए रहते हुए भी वह चौहद्दियों में बँधी नहीं रही। उससे आगे-कुछ ऐसे विषयों की ओर भी वह गयी है जो कविता के सनातन विषय रहे हैं मसलन प्रेम और प्रकृति, जीवन और मृत्यु आदि। इस तरह देखा जाय तो महेंद्रभटनागर प्रगतिशील कवियों की उस पंक्ति के कवि हैं जिनकी रचना-धर्मिता ने प्रगतिशील कविता के फलक को व्यापक बनाया है। बावजूद इसके, इन विषयों पर पूर्ववर्त्ती कवियों की मानसिकता के तहत न लिखकर महेंद्रभटनागर के कवि ने उन पर उस मनोभूमि में लिखा है, जिस मनोभूमि में ये विषय केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन या नागार्जुन जैसे प्रगतिशील कवियों द्वारा उजागर हुए हैं। महेंद्रभटनागर की प्रकृति-कविताएँ केदार अग्रवाल की कविताओं का स्मरण कराती हैं तो 'स्वकीया' के आलम्बन वाली प्रेम-कविताओं में हमें नागार्जुन, त्रिलोचन, केदार एक साथ दिखायी देते हैं। ये कविताएँ उपर्युक्त कवियों की अनुकृति नहीं, समानता है तो मनोभूमि की।

आज के समय में आदमियत के क्षरण पर, राजनीति की विद्रूपताओं पर, सामाजिक जीवन की विकृतियों और विडम्बनाओं पर भी कवि ने लिखा है। बावजूद इसके आदमी के उज्ज्वल भविष्य पर उसे भरोसा है। वह निराश और हताश इस नाते नहीं है कि उसके पास वह इतिहास-दृष्टि है, जो उसे बताती है कि आदमी ज़िन्दा है और ज़िन्दा रहेगा हर आपदा-विपदा के बावजूद, क्योंकि उसके पास उसके श्रम की शक्ति है, और श्रमजीवी कभी नहीं मरा करता। महेन्द्रभटनागर के कवि-कर्म से कविता की प्रगतिशील धारा समृद्ध हुई है, ऐसा विश्वास के साथ कहा जा सकता है। कुल मिलाकर, महेंद्रभटनागर की कविता धरती और जीवन के प्रति अकुंठ राग की कविता है। वह मानव-जिजीविषा की कविता है, जो मरना नहीं जानती।

डॉ. शिवकुमार मिश्र **(वल्लभ-विद्यानगर)**

सृजन-यात्रा : महेंद्रभटनागर

परिचय

प्रगतिशील हिंदी कविता के लब्धप्रतिष्ठ कवि महेंद्रभटनागर की प्रतिनिधि कविताओं का संकलन आपके समक्ष है। प्रस्तुत संकलन विषयानुसार छह खंडों में तैयार किया गया है। यथा –

समाजार्थिक यथार्थ और मानव-गरिमा की प्रतिष्ठा-रक्षा के लिए संनद्ध युगीन समतामूलक विचारों का सबल स्वरों में उद्घोष करती रचनाएँ, समाज के कमज़ोर वर्गों की मुक्ति-अवधारणा को आकार देती और बल पहुँचाने वाली प्रेरक कविताएँ। जनसंवेदना-जनचेतना से सम्बद्ध।

जीवन के विविध पक्षों को स्पर्श करने वाली कविताएँ; जिनमें जीवन और जगत के प्रति कवि का दृष्टिकोण, जीवन-अनुभवों से निर्मित कवि का अपना दर्शन व चिन्तन, आशा व आस्था में उसका विश्वास, हर्ष और उल्लास के साथ-साथ, वास्तविक यथार्थ जीवन की पीड़ा व वेदना-सिक्त दु:खपूर्ण अनुभूतियों की अभिव्यक्ति, व्यक्तिगत एवं समष्टिगत जीवन-संघर्ष का सामना करते हुए; मानवीय संवेदना और मानवीय सरोकारों से सम्पृक्त सशक्त प्राणवान रचनाएँ आदि।

प्रेम और प्रणय-भावनाओं से सराबोर हृदय की मधुर, सरस, कोमल अभिव्यक्तियाँ। स्थूल शारीरिक एवं सूक्ष्म आत्मिक संबंधों में सामाजिक स्वास्थ्य और मानवीय सौंदर्य की निहिति। दाम्पत्य जीवन व स्वकीया भावना के प्रति रुझान आदि से समृद्ध संगीत की स्वर-लहरियाँ इस खंड की रचनाओं में द्रष्टव्य। मानव अस्तित्व व विकास के लिए प्रणय की अपरिहार्यता सर्वविदित है। इतने महत्वपूर्ण पक्ष की अवहेलना का प्रश्न ही नहीं उठता। इस लोकमंगलकारी प्रेम

की अनेक गूढ़-गहन अनुभूतियों व भंगिमाओं से परिपूर्ण रचनाएँ इस खंड में समाविष्ट हैं।

प्रकृति को उकेरते अनेक चित्रों का रंगीन अंकन, सुगढ़-अनगढ़ प्रकृति सौन्दर्य के प्रति कवि की अनुरक्ति। विराट प्रकृति के अनुरूप विराट कल्पनाएँ, प्रकृति के भयानक-विनाशक रूप को स्वयं कवि ने देखा-झेला कम; समाचारों व चित्रों से जाना; सम्भवत: इसलिए इस ओर ध्यान कम रहा।

मृत्यु जीवन से अभिन्न-अटूट है। जन्म लिया है तो मरण भी एक दिन वरण करना ही होगा। घर और बाहर की मृत्यु-घटनाओं से कौन बावस्ता नही होता! मृत्यु मानव को बुरी तरह झकझोर डालती है। उसका चिन्तन ही स्वयं में भयावह व कष्टप्रद है। मृत्यु जैसे विषय पर कवि ने अनेक कविताएँ लिखी हैं। मृत्यु के अनेक पक्षों पर उसने विचार किया है; जिसमें सर्वत्र यथार्थ दृष्टि मिलती है। चूँकि कवि का दृष्टिकोण वैज्ञानिक है; अत: मृत्यु के संदर्भ में स्थापित धार्मिक धारणाओं की; मृत्यु के संदर्भ में प्रचलित अंधविश्वासों की; व्यक्ति के अंतिम संस्कार से जुड़े आडम्बरपूर्ण कार्य-कलापों की वह बड़े तीखे ढंग से आलोचना करता है; उन्हें पूर्ण रूप से निरस्त कर देता है। एक वर्ग-विशेष ने मृत्यु और परलोक संबंधी कपोल-कल्पित व्यवस्थाओं का प्रचार करके उसे अपने स्वार्थ और लाभ-पूर्ति का माध्यम बना रखा है। कवि की प्रगतिशील वैज्ञानिक चिचारधारा इसके विरोध में बड़े सशक्त ढंग से अभिव्यक्त हुई है। मृत्यु से वह भयभीत नहीं। उसे अपनाने के लिए वह पहले से ही तैयार है। तभी तो अनेक कविताओं में मृत्यु-विनोद के दर्शन होते हैं।

महेंद्रभटनागर प्रगतिवादी-जनवादी कवि के रूप में ख्यात हैं। हम सोचते हैं; प्रगतिवादी-जनवादी हृदय से कठोर होता है। वह व्यक्तिगत जीवन व उससे जुड़ी अनुभूतियों को महत्व नहीं देता। उदास होने अथवा रोने का जैसे उसे कोई अधिकार नहीं। उसकी राग-भावना सामान्य व्यक्ति के अनुरूप नहीं होती। वह सब-कुछ सहन कर सकता है। व्यक्ति और समाज के छद्म आचरण, छल-कपट, झूठ-फरेब, विश्वासघात आदि को उसे महत्व नहीं देना है, उसे भोगे हुए व्यक्तिगत यथार्थ का चित्रण नहीं करना है। 'अनुभूतियाँ : एक हताश व्यक्ति की' शीर्षक से, जीवन-त्रासदी की कुछ कविताएँ प्रस्तुत संकलन में समाविष्ट हैं। कुछ समीक्षकों ने महेंद्रभटनागर को जीवन-त्रासदी का गायक-कवि भी कहा है। उनके काव्य में दर्द जगह-जगह उभरा है। यह जो कुछ है, स्पष्ट है, सत्य

है, स्वाभाविक है। इन कविताओं का अपना मनोवैज्ञानिक पक्ष है; जिस पर ग़ौर किया जाना चाहिए।

इस प्रकार, महेंद्रभटनागर का काव्य निर्भीक व्यंजना का काव्य है। उसके हृदय ने जो अनुभव किया; उसके मस्तिष्क ने जो चिन्तन किया – उसे सहज व पूरी ईमानदारी से बड़े साहस के साथ अभिव्यक्त किया है। इस कारण वे किसी वाद-विशेष की सीमाओं में बँध नहीं पाते। माना, उनके काव्य का अधिकांश सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक चेतना से सम्बद्ध है। तथाकथित धर्म जो मानव-समुदाय को बुरी तरह जकड़े हुए है; उसके सुधार-परिष्कार के प्रति भी महेंद्रभटनागर की कविता सजग व निडर है। वह सच्चे मानव-धर्म का उद्घोष करती है। 'वसुधैवकुटुम्बकम्' और धर्म-निरपेक्षता को वाणी देती है।

– डॉ. आर . एच . वणकर
प्रोफ़ेसर हिन्दी / सम्पादक 'शब्द-संचार'
उपलेटा - राजकोट - गुजरात

सामाजिक यथार्थ की कविताएँ

दो ध्रुव

स्पष्ट विभाजित है
जन-समुदाय –
समर्थ / असहाय।
हैं एक ओर –
भ्रष्ट राजनीतिक दल
उनके अनुयायी खल,
सुख-सुविधा-साधन-सम्पन्न
प्रसन्न।
धन-स्वर्ण से लबालब
आरामतलब / साहब और मुसाहब।
बँगले हैं / चकले हैं,
तलघर हैं / बंकर हैं,
भोग रहे हैं
जीवन की तरह-तरह की नेमत,
हैरत है, हैरत!

दूसरी तरफ़ –
जन हैं
भूखे-प्यासे दुर्बल, अभावग्रस्त ... त्रस्त,
अनपढ़,
दलित असंगठित,
खेतों - गाँवों / बाज़ारों-नगरों में
श्रमरत,
शोषित / वंचित / शंकित!

विपत्ति-ग्रस्त

बारिश थमने का नाम नहीं लेती,
जल में डूबे गाँवों-क़स्बों को
थोड़ा भी आराम नहीं देती!
सचमुच, इस बरस तो
क़हर ही टूट पड़ा है,
देवा, भौचक खामोश खड़ा है।

ढह गया घरौंधा
छप्पर-टप्पर,
बस, असबाब पड़ा है औंधा!
आटा-दाल गया सब बह,
देवा, भूखा रह।

इंधन गीला
नहीं जलेगा चूल्हा,
तैर रहा है चौका
रहा-सहा।
घन-घन करते नभ में वायुयान
मँडराते गिद्धों जैसे!
शायद,
नेता / मंत्री आये
करने चेहलक़दमी!
उत्तर-दक्षिण / पूरब-पश्चिम
छायी ग़मी-ग़मी!
अफ़सोस
कि बारिश नहीं थमी!

दृष्टि

जीवन के कठिन संघर्ष में
हारो हुओ!
हर क़दम
दुर्भाग्य के मारो हुओ!
असहाय बन
रोओ नहीं,
गहरा अँधेरा है,
चेतना खोओ नहीं।

पराजय को
विजय की सूचिका समझो,
अँधेरे को
सूरज के उदय की भूमिका समझो।

विश्वास का यह बाँध
फूटे नहीं!
नये युग का सपन यह
टूटे नहीं!
भावना की डोर यह
छूटे नहीं!

परिवर्तन

मौसम कितना बदल गया!
सब ओर कि दिखता
नया-नया!

सपना – जो देखा था
साकार हुआ,
अपने जीवन पर
अपनी क़िस्मत पर
अपना अधिकार हुआ।

समता का
बोया था जो बीज-मंत्र
पनपा, छतनार हुआ।

सामाजिक-आर्थिक
नयी व्यवस्था का आधार बना।
शोषित-पीड़ित जन-जन जागा,
नवयुग का छविकार बना।

साम्य-भाव के नारों से
नभ-मंडल दहल गया!
मौसम कितना बदल गया!

सुखद

सहधर्मी / सहकर्मी
खोज निकाले हैं
दूर-दूर से
आस-पास से
और जुड़ गया है
अंग-अंग
सहज
किंतु / रहस्यपूर्ण ढंग से
अटूट तारों से,
चारों छोरों से
पक्के डोरों से।

अब कहाँ अकेला हूँ?
कितना विस्तृत हो गया अचानक
परिवार आज मेरा यह!
जाते-जाते
कैसे बरस पड़ा झर-झर
विशुद्ध प्यार घनेरा यह!
नहलाता आत्मा को
गहरे-गहरे!
लहराता मन का
रिक्त सरोवर
ओर-छोर
भरे-भरे!

अद्‌भुत

आदमी –
अपने से पृथक धर्म वाले आदमी को
प्रेम-भाव से – लगाव से
क्यों नहीं देखता?
उसे ग़ैर मानता है,
अक़्सर उससे वैर ठानता है।
अवसर मिलते ही
अरे, ज़रा भी नहीं झिझकता
देने कष्ट,
चाहता है देखना उसे
जड-मूल-नष्ट।

देख कर उसे
तनाव में आ जाता है,
सर्वत्र दुर्भाव प्रभाव घना छा जाता है।

ऐसा क्यों होता है?
क्यों होता है ऐसा?

कैसा है यह आदमी?
गज़ब का
आदमी अरे, कैसा है यह?
ख़ूब अजीबोगरीब मज़हब का
कैसा है यह?
सचमुच, डरावना बीभत्स काल जैसा!
जो – अपने से पृथक धर्म वाले को
मानता-समझता केवल ऐसा-वैसा!

स्वप्न

पागल सिरफिरे किसी भटनागर ने
माननीय प्रधान-मंत्री .... की
हत्या कर दी,
भून दिया गोली से!!

ख़बर फैलते ही
लोगों ने घेर लिया मुझको -
'भटनागर है,
मारो ... मारो ... साले को!
हत्यारा है ... हत्यारा है!'

मैंने उन्हें बहुत समझाया
चीख-चीख कर समझाया –
भाई, मैं वैसा 'भटनागर' नहीं!
अरे, यह तो फ़कत नाम है मेरा,
उपनाम (सरनेम) नहीं।
मैं 'महेंद्रभटनागर हूँ,
या 'महेंद्र' हूँ
भटनागर-वटनागर नहीं,
भई, कदापि नहीं!
ज़रा, सोचो-समझो।

लेकिन भीड़ सोचती कब है?
तर्क सचाई सुनती कब है?
सब टूट पड़े मुझ पर
और राख कर दिया मेरा घर!!

इतिहास गवाही दे –

किन-किन ने / कब-कब / कहाँ-कहाँ
झेली यह विभीषिका,
यह जुल्म सहा?
कब-कब / कहाँ-कहाँ
दरिन्दगी की ऐसी रौ में
मानव समाज हो पथ-भ्रष्ट बहा?

वंश हमारा / धर्म हमारा
जोड़ा जाता है क्यों
नामों से, उपनामों से?
कोई सहज बता दे–
ईसाई हूँ या मुस्लिम या फिर हिन्दू हूँ।
(कार्यस्थ एक, शूद्र कहीं का!)
कहा करे कि
'नाम है मेरा - महेंद्रभटनागर,
जिसमें न छिपा है वंश, न धर्म!'
(न और कोई मर्म!)

अतः कहना सही नहीं –
'क्या धरा है नाम में!'
अथवा 'जात न पूछो साधु की।'
हे कबीर! क्या कोई मानेगा बात तुम्हारी?
आख़िर, कब मानेगा बात तुम्हारी?

'शिक्षित' समाज में,
'सभ्य सुसंस्कृत' समाज में
आदमी – सुरक्षित है कितना?
आदमी – अरक्षित है कितना?
हे सर्वज्ञ इलाही,
दे, सत्य गवाही!

अनुभव-सिद्ध

तय है कि काली रात गुज़रेगी,
भयावह रात गुज़रेगी।
असफल रहेगा
हर घात का आघात,
पराजित रात गुज़रेगी।

यक़ीनन हम
मुक्त होंगे त्रासदायी स्याह घेरे से,
रू-ब-रू होंगे
स्वर्णिम सबेरे से,
अरुणिम सबेरे से।

तय है–
अँधेरे पर उजाले की विजय तय है।
पक्षी चहचहाएंगे,
मानव प्रभाती गान गाएंगे।
उतरेंगी गगन से सूर्य-किरणें
नृत्य की लय पर,
धवल मुसकान भर-भर।

तय है कि
संघातक कठिन दु:सह अँधेरी
रात गुज़रेगी।
कुचक्रों से घिरा आकाश बिफरेगा,
आहत ज़िंदगी इंसान की
सँवरेगी।

सावधान

अँधेरा है, अँधेरा है,
बेहद अँधेरा है।
घुप अँधेरे ने
सारी सृष्टि को
अपने जाल में / जंजाल में
धर दबोचा है,
घेरा है।

नहीं; लेकिन
तनिक भयभीत होना है,
हार कर मन में
पल एक निष्क्रिय बन
न सोना है।
तय है–
कुछ क्षणों में
रोशनी की जीत होना है।

आओ
रोशनी के गीत गाएँ।
सघन काली अमावस है
पर्व दीपों का मनाएँ।

तम घटेगा
तम छँटेगा
तम हटेगा।

अदम्य

दूर-दूर तक छाया सघन कुहर–
कुहरे को भेद
डगर पर बढ़ते हैं हम।

चट्टानों ने जब-जब
पथ अवरुद्ध किये–
चट्टानों को तोड़
नयी राहें गढ़ते हैं हम।

ठंडी तेज़ हवाओं के वर्तुल झोंके आते हैं–
तीव्र चक्रवातों के सम्मुख
सीना ताने
पग-पग अड़ते हैं हम।

सागर-तट पर टकराता
भीषण ज्वारों का पर्वत–
उमड़ी लहरों पर चढ़
पूरी ताक़त से लड़ते हैं हम।

दरियाओं की बाढ़ें
तोड़ किनारे बहती हैं–
जल भँवरों / आवेगों को थाम
सुरक्षा-यान चलाते हैं हम।

काली अंधी रात क़यामत की
धरती पर घिरती है जब-जब–
आकाशों को जगमग करते
आशाओं के / विश्वासों के
सूर्य उगाते हैं हम।

मणि-दीप जलाते हैं हम।

ज्वालामुखियों ने जब-जब
उगली आग भयावह–
फैले लावे पर
घर अपना बेख़ौफ़ बनाते हैं हम।

भूकंपों ने जब-जब
नगरों गाँवों को नष्ट किया–
पत्थर के ढेरों पर
बस्तियाँ नयी हर बार बसाते हैं हम।

परमाणु-बमों / उद्जन-शस्त्रों की
मारों से
आहत भू-भागों पर
देखो कैसे
जीवन का परचम फहराते हैं हम।
चारों ओर नयी अँकुराई हरियाली
लहराते हैं हम।

कैसे तोड़ोगे इनके सिर?
कैसे फोड़ोगे इनके सिर?

दुर्दम हैं,
इनमें अद्भुत ख़म है।

काल-पटल पर अंकित है–
'जीवन-अपराजित है!'
●

संकल्पित

प्रज्ज्वलित-प्रकाशित
दीप हैं हम।
सिर उठाये,
जगमगाती रोशनी के
दीप हैं हम।
वेगवाही अग्नि-लहरों से
लहकते चिन्ह-धर,
ध्रुव-दीप हैं हम।

शांत प्रतिश्रुत
दृढ़ प्रतिज्ञाबद्ध–
छायी घन-अँधेरी शक्ति का
पीड़न-भरा
साम्राज्य हरने के लिए,
सर्वत्र
नव आलोक-लहरों से
उफ़नता ज्वार
भरने के लिए।

हमारा दीप्त
द्युति-अस्तित्व
करता लोक को आश्वस्त,
जन-समुदाय की
प्रत्येक आशंका
विनष्ट-निरस्त !
भर उठता सहज हर्षानुभूति से
हर दबा भय-त्रस्त।
होता एक क्षण में रुद्ध मार्ग प्रशस्त!

प्रतिबद्ध हैं हम –
व्यक्ति के मन में उगी-उपजी
निराशा का, हताशा का
कठिन संहार करने के लिए !
हर हत हृदय में
प्राणप्रद उत्साह का संचार करने के लिए !
●

सार्थकता

आओ
दीवारों के घेरों / परकोटों से
बाहर निकलें।

अपने सुख-चिंतन से ऊपर उठ कर
जग-क्रंदन को
स्वर-सरगम में बदलें।

मुरझाये रोते चेहरों को
मुसकानें बाँटें,
उनके जीवन-पथ पर छितराया
कुहरा छाँटें।

रँग दें घनघोर अँधेरे को
जगमग तीव्र उजालों से,
त्रासों और अभावों की
निर्मम मारों से,
हारों को, लाचारों को
ढक दें,
लद-लद पीले-लाल गुलाबों की
जयमालों से।

घर-घर जाकर
सहमे-सहमे बच्चों को
प्यारी-प्यारी मोहक किलकारी दें,
कँकरीली और कँटीली परती पर
रंग-बिरंगी लहराती फुलवारी दें।
●

संग्राम; और

जिस स्वप्न को
साकार करने के लिए–
संपूर्ण पीढ़ी ने किया
संघर्ष
अनवरत संघर्ष,
सर्वस्व जीवन-त्याग;
वह
हुआ आगत।

कर गया अंकित
हर अधर पर हर्ष,
चमके शिखर-उत्कर्ष।
प्रोज्ज्वल हुई
हर व्यक्ति के अंत:करण में
आग,
अभिनव स्फूर्ति भरती आग।
संज्ञा-शून्य आहत देश
नूतन चेतना से भर
हुआ जाग्रत,
सघन नैराश्य-तिमिराच्छन्न कलुषित वेश
बदला दिशाओं ने,
हुआ गतिमान जन-जन
स्पंदन-युक्त कण-कण।

आततायी निर्दयी
साम्राज्यवादी शक्ति को
लाचार करने के लिए–
नव-विश्वास से ज्योतित

उतारा था समय-पट पर
जिस स्वप्न का आकार
वह,
हाँ, वह हुआ साकार !

लेकिन तभी....
अप्रत्याशित-अचानक
तीव्रगामी / धड़धड़ाते / सर्वग्राही,
स्वार्थ-लिप्सा से भरे
भूकंप ने
कर दिए खंडित–
श्रम-विनिर्मित
गगनचुंबी भवन,
युग-युग सताये आदमी के
शान्ति के, सुख के सपन!

इसलिए; फिर
दृढ़ संकल्प करना है,
वचन को पूर्ण करना है,
विकृत और धुँधले स्वप्न में
नव रंग भरना है,
कमर कसकर
फिर कठिन संघर्ष करना है।
●

अमानुषिक

आज फिर खंडित हुआ विश्वास,
आज फिर धूमिल हुई
अभिनव ज़िंदगी की आस।
ढह गए
साकार होती कल्पनाओं के महल।
बह गए
अतितीव्र आक्रामक उफ़नते ज्वार में,
युग-युग सहेजे भव्य-जीवन-धारणाओं के अचल।

आज छाये फिर प्रलय-घन,
सूर्य– संस्कृति-सभ्यता का
फिर ग्रहण-आहत हुआ,
षड्यंत्रों-घिरा यह देश मेरा
आज फिर मर्माहत हुआ।
फैली गंध नगर-नगर
विषैली प्राणहर बारूद की,
विस्फोटकों से पट गयी धरती,
सुरक्षा-दुर्ग टूटे
और हर प्राचीर क्षत-विक्षत हुई।

जन्मा जातिगत विद्वेष,
फैला धर्मगत विद्वेष,
भूँका प्रांत-भाषा द्वेष,
गँदला हो गया परिवेश।
सर्वत्र दानव वेश।
घुट रही साँसें,
प्रदूषित वायु, विष-घुला जल,
छटपटाती आयु।
●

इतिहास का एक पृष्ठ

सच है, घिर गए हैं हम
चारों ओर से
हर क़दम पर
नर-भक्षियों के चक्रव्यूहों में,
भौंचक-से खड़े हैं
लाशों-हड्डियों के ढूहों में।

सच है, फँस गए हैं हम
चारों ओर से
हर क़दम पर
नर-भक्षियों के दूर तक
फैलाए-बिछाए जाल में,
छल-छद्म की
उनकी घिनौनी चाल में।

बारूदी सुरंगों से जकड़ कर
कर दिया निष्क्रिय
हमारे लौह-पैरों को
हमारी शक्तिशाली दृढ़ भुजाओं को।
भर दिया घातक विषैली गंध से,
दुर्गन्ध से
चारों दिशाओं की हवाओं को।

सच है,
उनके क्रूर पंजों ने
है दबा रखा गला,
भींच डाले हैं
हर अन्याय को करते उजागर

दहकते रक्तिम अधर।
मस्तिष्क की नस-नस
विवश है फूट पड़ने को,
ठिठक कर रह गए हैं हम।
खंडित पराक्रम
अस्तित्व / सत्ता का अहम्।

सच है कि
आक्रामक-प्रहारक सबल हाथों की
जैसे छीन ली क्षमता त्वरा–
अब न हम ललकार पाते हैं
न चीख पाते हैं,
स्वर अवरुद्ध
मानवता-विजय-विश्वास का,
सूर्यास्त जैसे, गति-प्रगति की आस का।
अब न मेधा में हमारी
क्रांतिकारी धारणाओं-भावनाओं की
कड़कती तीव्र विद्युत कौंधती है,
चेतना जैसे
हो गयी है सुन्न जड़वत्।
चेष्टाहीन हैं / मजबूर हैं,
हैरान हैं, भारी थकन से चूर हैं।

लेकिन नहीं अब और स्थिर रह सकेगा
आदमी का आदमी के प्रति
हिंसा-क्रूरता का दौर।
दृढ़ संकल्प करते हैं
कठिन संघर्ष करने के लिए,
इस स्थिति से उबरने के लिए!
●

आतंक के घेरे में

एक बहुत बड़ी और गहरी
साज़िश की गिरफ़्त में है देश।

चालाक और धूर्त गिरोहों के
चंगुल में फँसा
छद्म धर्म और बर्बर जातीयता के
दलदल में धँसा,
एक बहुत बड़ी और घातक
जहालत में है देश।

आत्मीय रिश्तों का पक्षधर
दोस्ती के
सपनों व अरमानों का घर,
एक बहुत बड़ी और भयावह
दहशत में है देश।

संलग्न
सभ्य और नये इंसानों की अवतारणा में,
संलग्न
शांति और अहिंसा की
कठिनतम साधना में,
एक बहुत बड़ी और भारी
मुसीबत में है देश।

●

अग्नि-परीक्षा

काली भयानक रात,
चारों ओर झंझावात,
पर, जलता रहेगा – दीप...मणिदीप
सद्भाव का / सहभाव का।
उगती जवानी देश की होगी नहीं गुमराह।
उजले देश की जाग्रत जवानी
लक्ष्य युग का भूल होगी नहीं गुमराह,
तनिक तबाह।

मिटाना है उसे – जो कर रहा हिंसा,
मिटाना है उसे–
जो धर्म के उन्माद में फैला रहा नफ़रत,
लगाकर घात गोली दाग़ता है
राहगीरों पर / बेक़सूरों पर।
मिटाना है उसे – जिसने बनायी
धधकती बारूद-घर दरगाह।
इन गंदे इरादों से
नये युग की जवानी
तनिक भी होगी नहीं गुमराह।

चाहे रात काली और हो,
चाहे और भीषण हों चक्रवात-प्रहार,
पर, सद्भाव का : सहभाव का
ध्रुव-दीप / मणि-दीप
निष्कंप रह जलता रहेगा।
साधु जीवन की
सतत साधक जवानी / आधुनिक,
होगी नहीं गुमराह।

भले ही वज्रवाही बदलियाँ छाएँ,
भले ही वेगवाही आँधियाँ आएँ,
सद्भावना का दीप
सम्यक् धारणा का दीप
संशय-रहित हो
अविराम / यथावत् जलता रहेगा।
एक पल को भी न टूटेगा प्रकाश-प्रवाह।
विचलित हो,
नहीं होगी जवानी देश की गुमराह।

उभरीं विनाशक शक्तियाँ जब-जब,
मनुजता ने दबा कुचला उन्हें तब-तब।
अमर – विजय विश्वास।
इतिहास चश्मदीद गवाह।
जलती जवानी देश की होगी नहीं गुमराह।

एकता को तोड़ने की साज़िशें
नाकाम होंगी,
हम रहेंगे एक राष्ट्र अखंड
शक्ति प्रचंड।
सहन हरगिज़ नहीं होगा
देश के प्रति छल-कपट
विश्वासघात गुनाह।
मेरे देश की विज्ञान-आलोकित जवानी
अंध-कूपों में कभी होगी नहीं गुमराह।

नये इंसानों से

पहले सोचते हैं हम
अपने घर-परिवार के लिए।
फिर–
अपने धर्म, अपनी जाति, अपने प्रांत
अपनी भाषा और अपनी लिपि के लिए।

आस्थाएँ : संकुचित।
निष्ठाएँ : सीमित परिधि में क़ैद।

हम अपने इस सोच की रक्षा के लिए
मानव-रक्त की नदियाँ बहा देते हैं,
पड़ोसियों को गोलियों से भून देते हैं,
वहशी बन जाते हैं, आदमख़ोर हिंस्र
जानवर से भी अधिक,
भयानक शक़्ल धारण कर लेते हैं।
हमारे 'महान' और 'शहीद' बनने का
एक मात्र रास्ता यही है।

पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह सोच
हमारी चेतना का अंग बन चुका है,
हम इससे मुक्त नहीं हो पाते।
बार-बार हमारा ईश्वर हमें उकसाता है–
हम दूसरों के ईश्वरों की हत्या कर दें
उनके अस्तित्व चिन्ह तोड़ दें
और स्वर्ग का स्थान
केवल अपने लिए सुरक्षित समझें।

साक्षी है इतिहास

कि देश हमें नहीं दिखता,
विश्व-मानवता का लिबास
हमें नहीं फबता।

इस पृथ्वी पर मात्र हम रहेंगे –
हमारे धर्मवाले
हमारी जातिवाले
हमारे प्रांत वाले
हमारी ज़बान वाले
हमारी लिपि वाले,
  यही हमारा देश है,
  यही हमारा विश्व है।

कौन तोड़ेगा इस पहचान को?
ख़ाक करेगा इस गलीज़ जहान को?

नये इंसानो!
आओ, क़रीब आओ
और मानवता की ख़ातिर
धर्म-विहीन, जाति-विहीन
समाज का निर्माण करो,
देशों की भौगोलिक रेखाएँ मिटाकर।
विभिन्न भाषाओं
विभिन्न लिपियों को
मानव-विवेक की उपलब्धि समझो।
नये इंसानो!
अब चुप मत रहो
तटस्थ मत रहो।

दूसरा मन्वन्तर

भविष्य वह आएगा कब
जब – मनुष्य कहलाएगा
मात्र 'मनुष्य'।
उसकी पहचान
जुड़ी रहेगी कब-तलक
देश से / धर्म से
जाति-उपजाति से
भाषा-विभाषा से
रंग से / नस्ल से?

मनुष्य के मौलिक स्वरूप को
किया जाएगा रेखांकित कब?
मनुष्य को
'मनुष्य' मात्र
किया जाएगा लक्षित कब?

उसका लोक एक है
उसकी रचना एक है
उसकी वृत्तियाँ एक हैं
उसकी आवश्यकताएँ एक हैं,
उसका जन्म एक है
उसका अंत एक है!

मनुष्य का विभाजन
कब-तलक
किया जाता रहेगा?
वह आख़िर कब-तलक
बर्बर मन की
चुभन-शताब्दियाँ सहेगा?

तोड़ो–
देशों की कृत्रिम सीमा-रेखाओं को,
तोड़ो–
धर्मों की
असंबद्ध, अप्रासंगिक, दक़ियानूस
आस्थाओं को!
तोड़ो–
जातियों-उपजातियों की
विभाजक व्यवस्थाओं को।

अर्जित हैं
भाषाओं-विभाषाओं की भिन्नताएँ,
प्रकृति नियंत्रित हैं
रंगों-नस्लों की
बहुविध प्रतिमाएँ।
ये सब
मानव को मानव से जोड़ने में
बाधक न हों,
ये सब
मानव को मानव से तोड़ने में
साधक न हों।

अवतरित हो
नया देवदूत, नया पैग़म्बर, नया मसीहा
इक्कीसवीं सदी का,
महान मानव-धर्म
प्रतिष्ठित हो,
अन्य लोकों में पहुँचने के पूर्व
मानव की पहचान
सुनिश्चित हो।

इतिहास-स्रष्टाओ!

इंसान की तक़दीर को
बदले बिना–
इंसान जो
अभिशप्त है : संत्रस्त है
जीवन-अभावों से।
इंसान जो
विक्षत प्रताड़ित क्षुब्ध पीड़ित
यातनाओं से, तनावों से।

उस दुखी इंसान की
तक़दीर को बदले बिना,
संसार की तसवीर को
बदले बिना–
संसार जो
हिंसा, विगर्हित नग्न पशुता ग्रस्त,
रक्त-रंजित, क्रूरता से युक्त
घातक अस्त्र-बल-मद-मस्त।

उस बदनुमा संसार की
तसवीर को बदले बिना,
इतिहास-स्रष्टाओ।
सुखद आरामगाहों में
तनिक सोना नहीं, सोना नहीं।
संघर्ष-धारा से विमुख
होना नहीं, होना नहीं।

हर भेद की प्राचीर को
तोड़े बिना,

पैरों पड़ी ज़ंजीर को
तोड़े बिना,
इतिहास-स्रष्टाओ।
सतत श्रम-साध्य
निर्णायक विजय-अवसर
अरे, खोना नहीं, खोना नहीं ।

इंसान की तक़दीर को
बदले बिना,
संसार की तसवीर को
बदले बिना,
सोना नहीं, सोना नहीं।

प्रतिरोध

विकास-राह रुद्ध,
जाति-युद्ध।

वंश-दर्प बन गया
कराल काल-सर्प।
दंश, तीव्र दंश,
सृष्टि के महान् जीव का
अथाह भ्रंश।
क्षुद्र संकुचित हृदय
उगल रहा ज़हर
कि ढा रहा क़हर।

मनुष्यता लहू-लुहान,
जातुधान गा रहा–
असार द्वेषयुक्त जाति-गान।
क्रूर, गर्व-चूर,
सभ्यता-विहीन
आत्म-लीन ।

बढ़ो, बढ़ो।
पशुत्व के अधीन
इस मनुष्य के उगे विषाण
और धारदार दाँत तोड़ने।
अमानवीय
जात-पाँत तोड़ने,
समाज और व्यक्ति को
सशक्त एक सूत्र में
अटूट जोड़ने।

विचित्र

यह कितना अजीब है।
आज़ादी के तीन-तीन दशक
बीत जाने के बाद भी,
पाँच-पाँच पंचवर्षीय योजनाओं के
रीत जाने के बाद भी
मेरे देश का आम आदमी ग़रीब है,
बेहद ग़रीब है।
यह कितना अजीब है!
सर्वत्र धन का, पद का, पशु का
साम्राज्य है,
यह कैसा स्वराज्य है?

धन, पद, पशु
भारत-भाग्य-विधाता हैं,
चारों दिशाओं में
उन्हीं का जय-जयकार,
उन्हीं का अहंकार
व्याप्त है, परिव्याप्त है,
और सब-कुछ समाप्त है।
शासन अंधा है, बहरा है,
जन-जन का संकट गहरा है।
(खोटा नसीब है।)
लगता है – परिवर्तन दूर नहीं,
क़रीब है।
किंतु आज यह सब
कितना अजीब है!

संक्रमण

यह नहीं होगा–
बंदूक की नोक
सचाई को दबाये रखे,
आदमी को आततायी के
पैरों पर झुकाये रखे,
यह नहीं होगा।

पशुता की गुलामी
अनेकों शताब्दियाँ ढो चुकी हैं,
लेकिन अब
ऐसा नहीं होगा।

यातनाओं की
किरचें भोथरी हो चुकी हैं,
क्या तुम नहीं देखते –
क्रूर जल्लादों की
वहशी योजनाओं की
बुनियादें हिल रही हैं?
मौत की काल-कोठरी बने
हर देश को
ज़िंदगी की
हवा और रोशनी मिल रही है।
घिनौनी साज़िशों का
पर्दा उठ गया है,
सारा माहौल ही
अब तो नया है।

सहभाव

आओ–
दूरियाँ
देशांतरों की, व्यक्तियों की
अत्यधिक सामीप्य में
बदलें।
बहुत मज़बूत
अन्तर-सेतु
बाँधें।

आओ–
अजनबीपन
हृदय का, अनुभूतियों का
सांत्वना
आश्वास में
बदलें।
परस्पर मित्रता का
गगन-चुम्बी केतु
बाँधें।

आओ–
अविद्या-अज्ञता
धर्मांतरों की
भिन्नता विश्वास की
समधीत सम्यक् बोध में
बदलें।
सुनिश्चित
विश्व-मानव-हेतु
साधें।
●

अन्तर्ध्वन्सक

कौन है,
वह कौन है?
जो –
हमारे स्वप्नों में
ख़लल डालता है,
हमारे
बनाये-सजाये
चित्रों को विकृत कर
बदल डालता है,
उनकी विराटता को
बौना कर देता है,
उनकी उन्मुक्तता में
कुण्ठा भर देता है।

वह कौन है?
वह दुस्साहसी कौन है?
जो –
हर संगत लकीर को
जगह-जगह से तोड़ कर
असंगत लिबास पहना देता है,
परिवेश की अर्थवत्ता छीन कर
अनर्गल वैशिष्ट्य से गहना देता है।
सही परिप्रेक्ष्य से
विस्थापित कर
हास्यास्पद भूमिकाओं की
चितकबरी प्लास्टर झड़ी
दीवारों पर
उल्टा टाँग देता है।

हमारे विश्वासों की
जीवन्त प्रतिमाओं को
खण्डित कर
कोलतारी स्वाँग देता है।

यह
किसका अट्टहास है?
चारों ओर लहराते
नागफाँस हैं।

पर, सावधान।
मैं
इतिहास को दोहराने नहीं दूँगा,
आतताइयों को
निरीह लाशों को रौंदते
विजय-गान गाने नहीं दूँगा।

इन स्वप्नों की
इन चित्रों की
गत्यात्मकता,
अनुभूत-सिद्ध वास्तविकता
दूर-पास फैले
असंख्य-अदृश्य
भेदियों के जालों को
तोड़ेगी,
मानव-मानव के बीच
पहली बार
सच्चा रिश्ता जोड़ेगी।

अब नहीं

अब सम्भव नहीं
बीते युगों की नीतियों पर एक पग चलना,
निरावृत आज
शोषक-तंत्र की प्रत्येक छलना।

अब नहीं सम्भव तनिक
बीते युगों की मान्यताओं पर
सतत गतिशील
मानव-चेतना को रुद्ध कर बढ़ना।

सकल गत विधि-विधानों की
प्रकट निस्सारता,
किंचित नहीं सम्भव मिटाना अब
बदलते लोक-जीवन की नयी गढ़ना।

शिखर नूतन उभरता है
मनुज सम्मान का,
हर पक्ष नव आलोक में डूबा निखरता है
दमित प्रति प्राण का,
नव रूप
प्रियकर मूर्ति में ढल कर सँवरता है
सबल चट्टान का।

हमारे इर्द-गिर्द

मेरे देश में
ओ करोड़ों मज़लूमो।
तुम्हें
अभी फुटपाथों से
छुटकारा नहीं मिला,
खौलते ख़ून के समुन्दर में
तैरते-तैरते
किनारा नहीं मिला।
बीसवीं शताब्दी के
इस आँठवें दशक में भी
सिर पर
खुला आसमान है,
नीचे
नंगी धरती।
सूनी निगाहें
ठण्डी आहें
विकलांग निरीहता
सर्दी, बरसात, आँधी।

मोटे-मोटे
खादीपोश
बदकिरदार
व्यापारियों-पूँजीपतियों,
मकान-मालिकों,
कॉलोनी-धारियों,
वकील-नेताओं के
मुँह में
यथा-पूर्व

विराजमान है–'गाँधी'!
बँगलों और कोठियों में
दीवारों पर
टँगे हैं गाँधी।
(या सलीब पर लटके हैं गाँधी!)

तिकड़मी मस्तिष्क के
बद-मिज़ाज
नये भारत के ये 'भाग्य-विधाता'
'एम्बेसेडर' में
धूल उड़ाते
मज़लूमों पर थूकते
मानवता को रौंदते
अलमस्त घूमते हैं,
किंचित सुविधाओं के इच्छुक
उनके चरण चूमते हैं।

मेरी पूरी पीढ़ी हैरान है।
नेतृत्व कितना बेईमान है।

वर्तमान

युग –
अराजकता-अरक्षा का,
सतत विद्वेष-स्वर-अभिव्यक्ति का,
कटु यातनाओं से भरा,
अमंगल भावनाओं से डरा।
धूमिल
गरजते चक्रवातों ग्रस्त,
प्रतिक्षण अभावों-संकटों से त्रस्त।

युग –
निर्दय विघातों का,
असह विष दुष्ट बातों का,
अभोगी वेदना का,
लुप्त मानव-चेतना का।
घोर अनदेखे अँधेरे का।
अ-जनबी / शोर
रक्तिम क्रूर जन-घातक सबेरे का।

परिणति

आजन्म
अपमानित-तिरस्कृत
ज़िंदगी
पथ से बहकती यदि–
सहज; आश्चर्य क्या है?
आजन्म
आशा-हत
सतत संशय-भँवर उलझी
पराजित ज़िंदगी
अविरत लहकती यदि–
सहज; आश्चर्य क्या है?
आजन्म
वंचित रह
अभावों-ही-अभावों में
घिसटती ज़िंदगी
औचट दहकती यदि–
सहज; आश्चर्य क्या है?

प्रतिबद्ध

हम
मूक कण्ठों में
भरेंगे स्वर
चुनौती के,
विजय-विश्वास के,
सुखमय भविष्य
प्रकाश के,
नव आश के।

हर व्यक्ति का जीवन
समुन्नत कर
धरा को
मुक्त शोषण से करेंगे,
वर्ग के
या वर्ण के
अन्तर मिटा कर
विश्व-जन-समुदाय को
हम
मुक्त दोहन से करेंगे।

न्याय-आधारित
व्यवस्था के लिए
प्रतिबद्ध हैं हम,
त्रस्त दुनिया को
बदलने के लिए
सन्नद्ध हैं हम।

नवोन्मेष

खण्डित पराजित
ज़िंदगी ओ! सिर उठाओ,
आ गया हूँ मैं
तुम्हारी जय सदृश
सार्थक सहज विश्वास का हिमवान।

अनास्था से भरी
नैराश्य-तम खोयी
थकी हत-भाग सूनी
ज़िंदगी ओ! सिर उठाओ,
और देखो
द्वार दस्तक दे रहा हूँ मैं
तुम्हारे भाग्य-बल का
जगमगाता सूर्य तेजोवान।

ज़िंदगी
इस तरह टूटेगी नहीं।
ज़िंदगी
इस तरह बिखरेगी नहीं।

अंधकार

शीत युद्ध से समस्त विश्व त्रस्त
हो रहा मनुष्य भय विमोह ग्रस्त।

डगमगा रही निरीह नीति-नाव
जल अथाह, नष्ट पाल-बंधु-भाव।

राष्ट्र द्वेष की भरे अशेष दाह
मित्रता प्रसार की निबद्ध राह।

मच रही अजीब अंध शस्त्र-होड़
पशु बना मनुज विचार-शक्ति छोड़।

जन-विनाश चक्र चल रहा दुरंत
आज साधु-सभ्यता विहान अंत।

गूँजते चतुर्दिशा कठोर बोल
रम्य-शांति-राग का रहा न मोल।

एकता-सितार तार छिन्न-भिन्न।
हर दिशा उदास मूक खिन्न-खिन्न।

अस्त सूर्य, प्राण वेदना अपार
अंधकार, अंधकार, अधंकार।

आलोक

मनुष्य का भविष्य–
अंधकार से,
शीत-युद्ध-भय प्रसार से
मुक्त हो, मुक्त हो।
रश्मियाँ विमल विवेक की विकीर्ण हों,
शक्तियाँ विकास की विरोधिनी विदीर्ण हों।
वर्ग-वर्ण भेद से,
आदमी-ही-आदमी की क़ैद से
मुक्त हो, मुक्त हो।

चक्रवात, धूल, वज्रपात से
नवीन मानसी क्षितिज
घिरे नहीं, घिरे नहीं।
नये समाज का शिखर
गिरे नहीं, गिरे नहीं।

पुनीत दिव्य साधना,
विश्व-शांति कामना,
उषा समान भूमि को सिँगार दे,
त्रस्त जग उबार दे
प्यार से दुलार दे!
नवीन भावना-पराग
आग में झुलस–
जले नहीं, जले नहीं।
अनेक अस्त्र-शस्त्र बल प्रहार से,
विषाक्त दानवी घृणा प्रचार से,
वर्तमान सभ्यता
मुक्त हो, मुक्त हो।

दीप जलता है!

दीप जलता है।
सरल शुभ मानवी संवेदना का स्नेह भरकर
हर हृदय में दीप जलता है।
युग-चेतना का ज्वार
जीवन-सिंधु में उन्मद मचलता है।
दीप जलता है।
तिमिर-साम्राज्य के
आतंक से निर्भय
अटल अवहेलना-सा दीप जलता है।

जगमगाता लोक नव आलोक से,
मुक्त धरती को करेंगे
अब दमन भय शोक से।
लुप्त होगा सृष्टि बिखरा तम
हृदय की हीनता का;
क्योंकि घर-घर
व्यक्ति की स्वाधीनता का
दीप जलता है।
बदलने को धरा
नव-चक्र चलता है।
नहीं अब भावना को
गत युगों का धर्म छलता है।
सकल जड़ रूढ़ियों की
शृंखलाएँ तोड़
नव, सार्थक सबल विश्वास का
ध्रुव-दीप जलता है।

आज की ज़िंदगी

ज़िंदगी हँसती हुई मुरझा गयी;
चाँद पर बदली गहन आ छा गयी।
यामिनी का रूप सारा हर लिया
कामिनी को हाय, विधवा कर दिया।

आदमी की सब बहारें छीन लीं,
उपवनों की फूल-कलियाँ बीन लीं।
फट गया मन लहलहाते खेत का,
बेरहम तफ़ान आया रेत का।

उर-विदारक दीखता है हर सपन,
सब तरफ़ से चाहनाओं का दमन।
रीति बदलीं आधुनिक संसार की,
राह सारी मुड़ गयी हैं प्यार की।

सामने बस स्वार्थ का जंगल घना
दुर्ग जिसमें डाकुओं का है बना।
मौत की शहनाइयाँ बजती जहाँ,
रंग-बिरंगी अर्थियाँ सजती जहाँ।

लेटने को हम वहाँ मजबूर हैं,
वेदना से अंग सारे चूर हैं।
इस तरह लँगड़ी हुई है ज़िंदगी
लड़खड़ाकर गिर रही लकवा लगी।

मध्य-वर्ग (चित्र - 1)

मेघों से घिरा आकाश है।
चहुँ ओर छाया,
बंद आँखों के सदृश,
गहरा अँधेरा,
घोंसलों में मूक चिड़ियाँ
ले रहीं सुख से बसेरा,
और हर अट्टालिका में
बज रहा मनहर पियानो, तानपूरा।

पर, टपकती छत तले
सद्यः प्रसव से
एक माता आह भरती है।

मगर यह ज़िंदगी इंसान की
मरती नहीं,
रह-रह उभरती है।

मध्य-वर्ग (चित्र - 2)

दस बज रहे हैं रात के–
काफ़ी दूर पर
कुछ बेसुरे-से ढोल बजते हैं
किसी बारात के।

अति-तार स्वर से
गा रहा है रेडियो सीलोन
बासी गीत फ़िल्मी
'आन' के 'बरसात' के।

पास के घर में
थकी-सी अर्द्ध-निद्रित
तीस वर्षीया कुमारी
करवटें लेती किसी की याद में।

क्लर्क है उसका पिता
और वह उलझा हुआ है
फ़ाइलों के ढेर में।
(ज़िंदगी के फेर में!)
सोचता है –
रात काफ़ी हो गयी,
अब शेष देखा जायगा जी बाद में।
झँपने लगीं पलकें
बड़े बेफ़िक्र बचपन की सहेजी याद में।

भविष्यत्

मनुष्य के भविष्य-पंथ पर
अपार अंधकार है,
प्रगाढ़ अंधकार है।
न चाँद है, न सूर्य,
बज रहा न सावधान-तूर्य।
मृत्यु के कगार पर
खड़ी मनुष्यता सभीत,
बार-बार लड़खड़ा रही।
कि उद्‌जनों व अणुबमों-प्रयोग से
कराह काँपती मही।
तबाह द्वीप हो रहे,
बड़े-बड़े नगर तमाम
देखते सदैव स्वप्न में 'हिरोशिमा'।
गगन विराट वक्ष पर विकीर्ण लालिमा,
धुआँ, धुआँ, धुआँ।

मनुष्य के भविष्य-पंथ पर प्रकाश चाहिए,
प्रकाश का प्रवाह चाहिए।
हरेक भुरभुरे कगार पर सशक्त बाँध चाहिए।
अटल खड़ा रहे मनुष्य,
आँधियों के सामने अड़ा रहे मनुष्य
शक्तिवान, वीर्यवान, धैर्यवान।
ज़िंदगी तबाह हो नहीं,
कराह और आह हो नहीं।
हँसी, सफ़ेद दूधिया हँसी
हरेक आदमी के पास हो।
सुखी भविष्य की नवीन आस हो।

लेखनी से–

लेखनी मेरी!
समय-पट पर चलो ऐसी कि जिससे
त्रस्त जर्जर विश्व का फिर से नया निर्माण हो।
क्षत, अस्थि-पंजर, पस्त-हिम्मत
मनुज की सूखी शिराओं में
रुधिर-उत्साह का संचार हो।

ओ लेखनी मेरी, चलो।
सोये हुए हैं जो उन्हें उगते दिवाकर की ख़बर दो।
और पथ में जो रुके उनको नयी ज्योतित डगर दो।
काफ़िला जो रेत के नीचे दबा बेचैन है
उसे सतत आकाश-आरोहणमयी नव-शक्ति दो।
तेवान, गोआ की ज़मी को मुक्ति दो।
भयभीत जो उसको सबल विश्वास दो।
रोते हुए मुख पर रुपहला हास दो।

ओ लेखनी मेरी! चलो,
जिससे कि दकियानूस-दुनिया के
सभी दृढ़ लौह बंधन टूट जाएँ,
और संस्कृति-सभ्यता की मूर्तियाँ सब
आततायी के विषैले क्रूर चंगुल से
सदा को छूट जाएँ।

ध्वंस पर अभिनव-सृजन-आह्वान दो,
हर आदमी के कंठ में
श्रम का सबल मधु गान दो।
प्रत्येक उर में प्यार का सागर भरो,
धुँधले नयन में रोशनी घर-घर भरो।

निश्चय

एक दिन निश्चय
तुम्हारे इन घिनौने और ज़हरीले
इरादों की समस्त जड़ें
अवनि को फोड़ उखड़ेंगी।
एक दिन निश्चय
तुम्हारी बेरहम नंगी कि ख़ूनी
वासनाओं की सड़ी धारा
धरा की धमनियों को छोड़कर
आकाश-पथ पर सूख जाएगी।
तुम्हारे स्वप्न के
सारे गगन-चुंबी महल
अभिनव प्रखर स्वर्णिम सुबह तक
पत्थरों के ढेर में
निश्चय, बदल कर
भूमि पर सोते मिलेंगे।

आज जन-जन के हृदय में आग है,
मुँह से निकलती बात भी बेलाग है।

संघर्ष से हर आदमी को
हो गयी बेहद मुहब्बत,
ज़िंदगी की पड़ गयी आदत
हमेशा राह पर चलना।
निरंतर सूर्य-सा जलना।
मनुष्यों की अथक ऐसी
निडर, दृढ़ फौज उगती जा रही,
जिसके क़दम पड़ते
धरा सज्जा बदलती जा रही।

बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे!

कुछ लोग
चाहे ज़ोर से कितना
बजाएँ युद्ध का डंका
पर, हम कभी भी
शांति का झंडा
ज़रा झुकने नहीं देंगे।
हम कभी भी
शांति की आवाज़ को
दबने नहीं देंगे।

क्योंकि हम
इतिहास के आरम्भ से
इंसानियत में,
शांति में
विश्वास रखते हैं,
गौतम और गांधी को
हृदय के पास रखते हैं।
किसी को भी सताना
पाप सचमुच में समझते हैं,
नहीं हम व्यर्थ में पथ में
किसी से जा उलझते हैं।

हमारे पास केवल
विश्व-मैत्री का
परस्पर प्यार का संदेश है,
हमारा स्नेह -
पीड़ित ध्वस्त दुनिया के लिए
अवशेष है।

हमारे हाथ –
गिरतों को उठाएंगे,
हज़ारों
मूक, बंदी, त्रस्त, नत,
भयभीत, घायल औरतों को
दानवों के क्रूर पंजों से बचाएंगे।

हमें नादान बच्चों की हँसी
लगती बड़ी प्यारी,
हमें लगती
किसानों के
गड़रियों के
गलों से गीत की कड़ियाँ मनोहारी।

खुशी के गीत गाते इन गलों में
हम
कराहों और आहों को
कभी जाने नहीं देंगे।
हँसी पर ख़ून के छींटे
कभी पड़ने नहीं देंगे।
नये इंसान के मासूम सपनों पर
कभी भी बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे!

काटो धान

काटो धान, काटो धान, काटो धान।

सारे खेत
देखो दूर तक कितने भरे,
कितने भरे / पूरे भरे।
घिर लहलहाते हैं
न फूले रे समाते हैं!
हवा में मिल
कुसुम-से खिल।
उठो, आओ,
चलो, इन जीर्ण कुटियों से
बुलाता है तुम्हें, साथी खुला मैदान।
काटो धान, काटो धान, काटो धान।

जब हिम-नदी का चू पड़ा था जल
अनेकों धार में चंचल,
हिमालय से बहायी जो गयी थी धूल
उसमें आज खिलते रे श्रमिक!
तेरे पसीने से सिँचे
प्रति पेड़ की हर डाल में
सित, लाल, पीले, फूल।
जीन के लिए देती तुम्हें
ओ! आज भू माता सहज वरदान।
काटो धान, काटो धान, काटो धान।

आकाश में जब घिर गए थे
मॉनसूनी घन सघन काले,
हृदय सूखे हुए

तब आश-रस से भर गए थे
झूम मतवाले।
किसी
सुन्दर, सलोनी, स्वस्थ, कोमल, मधु
किशोरी के नयन
कुछ मूक भाषा में
नयी आभा सजाए
जगमगाए श्वेत-कजरारे।
हुए साकार
भावों से भरे
अभिनव सरल जीवन लिए,
नूतन जगत के गान।
काटो धान, काटो धान, काटो धान।

जो सृष्टि के निर्माण हित बोए
तुम्हारी साधना ने बीज थे
वे पल्लवित।
सपने पलक की छाँह में पा चाह
शीतल ज्योत्स्ना की गोद में खेले।
(अरी इन डालियों को बाँह में ले ले!)

उठो!
कन्या-कुमारी से अखिल कैलाश के वासी
सुनो, गूँजी नयी झंकार।
हर्षित हो, उठो
परिवार सारे गाँव के
देखो कि चित्रित हो रहे अरमान।
काटो धान, काटो धान, काटो धान।

टूटे दाँत / सूखे केश

मुख पर झुर्रियों की वह सहज मुसकान,
प्रमुदित मुग्ध
फैला विश्व में सौरभ
महकता नभ,
सजग हो आज
मेर देश का अभिमान।
काटो धान, काटो धान, काटो धान।

मुख को छिपाती रही!

धुआँ ही धुआँ है,
नगर आज सारा नहाता हुआ है।
अँगीठी जली हैं
व चूल्हे जले हैं,
विहग बाल-बच्चों से मिलने चले हैं।

निकट खाँसती है छिपी एक नारी
मृदुल भव्य लगती कभी थी,
बनी थी किसी की विमल प्राण प्यारी।
उसी की शक़्ल अब धुएँ में सराबोर है।
और मुख की ललाई
अँधेरी-अँधेरी निगाहों में खोयी।
जिसे ज़िंदगी से
न कोई शिकायत रही अब,
व जिसके लिए है न दुनिया
भरी स्वप्न मधु से लजाती हुई नत।
अनेकों बरस से धुएँ में नहाती रही है।
कि गंगा व यमुना-सा
आँसू का दरिया बहाती रही है।
फटे जीर्ण दामन में
मुख को छिपाती रही है।

मगर अब चमकता है
पूरब से आशा का सूरज,
कि आती है गाती किरन,
मिटेगी यह निश्चय ही
दुख की शिकन।

अजेय

मुझको मिली कब हार है!

तुम रोकते हो क्यों मुझे?
तुम टोकते हो क्यों मुझे?
धधका निराशा का अनल
तुम झोंकते हो क्यों मुझे?
हैं अमर मेरे प्राण, मेरा अमर हर उद्‌गार है।

रुकना मुझे भाता नहीं,
थकना मुझे आता नहीं,
सह लक्ष-लक्ष प्रहार भी
झुकना मुझे आता नहीं,
प्रत्येक क्षण गतिवान जीवन, शक्ति का संसार है।

मैं बढ़ रहा तूफ़ान में,
ले क्रांति-ज्वाला प्राण में,
वरदान मुझको मिल रहा
प्रतिपद अभय बलिदान में,
नौका भँवर में हो फँसी, साहस अथक पतवार है।

–पहली बार

विश्व के इतिहास में
जनता सबल बन
आज पहली बार जागी है,
कि पहली बार बाग़ी है।

पुरानी लीक से हटकर
बड़ी मज़बूत चट्टानी रुकावट का
प्रबलतम धार से कर सामना डट कर,
विरल निर्जन कँटीली भूमि पथरीली
विलग कर, पार कर
जन-धार उतरी
मानवी जीवन धरातल पर
सहज अनुभूति अंतस-प्रेरणा बल पर।

कि पहली बार छायी हैं
लताएँ रंग-बिरँगी ये
कि जिनकी डालियों पर
देश की संकीर्ण रेखाएँ
सभी तो आज धुँधली हैं।
क्योंकि
अंतर में सभी के
एक से ही दर्द की
व्याकुल दहकती लाल चिनगारी
नवीना सृष्टि रचने की प्रलयकारी।

क़दम की एकता यह आज पहली है,
तभी तो हर विरोधी चोट सह ली है।

गुज़र गए हैं
हहरते क्रुद्ध भीषण अग्नि के तफ़ान
जिनका था नहीं अनुमान!

सभी के स्वत्व के संघर्ष में युग-व्यस्त
भावी वर्ष-सम साधक
भुवन प्रत्येक जन-अधिकार का रक्षक।

केलीफ़ोर्निया की मृत्यु-घाटी से,
कलाहारी, सहारा, हब्स, टण्ड्रा से
मिटी अज्ञान की गहरी निशा,
ज्योतित नये आलोक से रे हर दिशा।

निर्माण हित उन्मुख जगत जनता
विविध रूपा
विविध समुदाय
बैठा अब नहीं निरुपाय
उसको मिल गया
सुख-स्वर्ग का नव मंत्र
मुक्त स्वतंत्र।

उसका विश्व सारा आज अपना है,
नहीं उसके लिए कोई पराया, दूर सपना है।
युगान्तर पूर्व युग-जीवन विसर्जन
दृढ़ अटल विश्वास के सम्मुख सभी
अन्याय पोषित भावनाओं का
हुआ अविलम्ब निर्वासन।

बुझते दीप फिर से आज जलते हैं,
कि युग के स्नेह को पाकर
लहर कर मुक्त बलते हैं।

सघन जीवन-निशा विद्युत लिये
मानों अँधेरे में बटोही जा रहा हो टॉर्च ले
जब-जब करें डगमग चरण
तब-तब करे जगमग
उभरता लोक-जीवन मग।

कल्मष नष्ट,
पथ से भ्रष्ट!

दूर कर आतंक,
नहीं हो नृप न कोई रंक।

अभी तक जो रहे युग-युग उपेक्षित
वे सँभल कर सुन रहे
विद्रोह की ललकार।

पहली बार है संसार का इतना बड़ा विस्तार,
कि पहली बार इतनी आज कुर्बानी अपार।
●

ज़िंदगी कैसे बदलती है!

यह झोपड़ी है फूस की,
जिसकी पुरानी भग्न दीवारें,
व आधी छत खुली!

इस रात में
जो है बड़ी ठंडी,
खड़ी है मौन, तम से ग्रस्त।

उसमें ले रहे हैं साँस
कोई तीन प्राणी,
हार जिनने
आज तक किंचित न मानी।
भूमि पर लेटे हुए,
गुदड़ी समेटे और गट्ठर से बने
निज ज्वाल-जीवन से हरारत पा
कुहर के बादलों में
गर्म साँसें खींचते हैं,
और उसका शक्तिशाली उर
दबाकर भेदते हैं।

भग्न यदि दीवार है
पर, भग्न आशा है नहीं।
विश्वास धूमिल
और दृढ़ आवाज़ बंदी है नहीं।
कल देख लेना
ज़िंदगी कैसे बदलती है!
●

नयी नारी

तुम नहीं कोई
पुरुष की ज़र-ख़रीदी चीज़ हो,
तुम नहीं
आत्मा-विहीना सेविका
मस्तिष्क हीना-सेविका,
गुड़िया हृदयहीना।

नहीं हो तुम
वहीं युग-युग पुरानी
पैर की जूती किसी की,
आदमी के
कुछ मनोरंजन-समय की
वस्तु केवल।
तुम नहीं कमज़ोर,
तुमको चाहिए ना
सेज फूलों की।
नहीं मझधार में तुम
अब खड़ी शोभा बढ़ातीं
दूर कूलों की।

अब दबोगी तुम नहीं
अन्याय के सम्मुख,
नयी ताक़त, बड़ा साहस
ज़माने का तुम्हारे साथ है।
अब मुक्त कड़ियों से
तुम्हारे हाथ हैं।

तुम हो

न सामाजिक, न वैयक्तिक
किसी भी क़ैदखाने में विवश,
अब रह न पाएगा
तुम्हारे देह-मन पर
आदमी का वश –
कि जैसे वह तुम्हें रक्खे
रहो,
मुख से न अपने
भूल कर भी
कुछ कहो।

जग के
करोड़ों आज युवकों की तरफ़ से
कह रहा हूँ मैं –
तुम्हारा 'प्रभु' नहीं हूँ,
हाँ, सखा हूँ।
और तुमको
सिर्फ़ अपने
प्यार के सुकुमार-बंधन में
हमेशा बाँध रखना चाहता हूँ।
●

मशाल

बिखर गए हैं ज़िंदगी के तार-तार!
रुद्ध-द्वार, बद्ध हैं चरण,
खुल नहीं रहे नयन,
क्योंकि कर रहा है व्यंग्य
बार-बार देखकर गगन।
भंग राग-लय सभी
बुझ रही है ज़िंदगी की आग भी।
आ रहा है दौड़ता हुआ
अपार अंधकार।
आज तो बरस रहा है विश्व में
धुआँ, धुआँ।

शक्ति लौह के समान ले
प्रहार सह सकेगा जो
जी सकेगा वह।
समाज वह–
एकता की शृंखला में बद्ध,
स्नेह-प्यार-भाव से हरा-भरा
लड़ सकेगा आँधियों से जूझ।

नवीन ज्योति की मशाल
आज तो गली-गली में जल रही,
अंधकार छिन्न हो रहा,
अधीर-त्रस्त विश्व को उबारने
अभ्रांत गूँजता अमोघ स्वर,
सरोष उठ रहा है बिम्ब-सा
मनुष्य का सशक्त सर।
●

ग्रीष्म

तपता अम्बर, तपती धरती, तपता रे जगती का कण-कण।

त्रस्त विरल सूखे खेतों पर
बरस रही है ज्वाला भारी,
चक्रवात, लू गरम-गरम से
झुलस रही है क्यारी-क्यारी,
चमक रहा सविता के फैले प्रकाश से व्योम-अवनि-आँगन।

जर्जर कुटियों से दूर कहीं
सूखी घास लिए नर-नारी,
तपती देह लिए जाते हैं,
जिनकी दुनिया न कभी हारी,
जग-पोषक स्वेद बहाता है, थकित चरण ले, बहते लोचन।

भवनों में बंद किवाड़ किये,
बिजली के पंखों के नीचे,
शीतल ख़स के परदे में
जो पड़े हुए हैं आँखें मींचे,
वे शोषक जलना क्या जानें जिनके लिए खड़े सब साधन।

रोग-ग्रस्त, भूखे, अधनंगे
दमित, तिरस्कृत शिशु दुर्बल,
रुग्ण दुखी गृहिणी जिसका क्षय
होता जाता यौवन अविरल,
तप्त दुपहरी में ढोते हैं मिट्टी की डलियाँ, फटे चरण।
●

नारी

चिर-वंचित, दीन, दुखी बंदिनि! तुम कूद पड़ीं समरांगण में,
भर कर सौगन्ध जवानी की उतरीं जग-व्यापी क्रंदन में,
युग के तम में दृष्टि तुम्हारी चमकी जलते अंगारों-सी,
काँपा विश्व, जगा नवयुग, हृत-पीड़ित जन-जनके जीवन में।

अब तक केवल बाल बिखेरे कीचड़ और धुएँ की संगिनि
बन, आँखों में आँसू भरकर काटे घोर विपद के हैं दिन,
सदा उपेक्षित, ठोकर-स्पर्शित पशु-सा समझा तुमको जग ने,
आज भभक कर सविता-सी तुम निकली हो बनकर
अभिशापिन!

बलिदानों की आहुति से तुम भीषण हड़कंप मचा दोगी,
संघर्ष तुम्हारा न रुकेगा त्रिभुवन को आज हिला दोगी,
देना होगा मूल्य तुम्हारा पिछले जीवन का ऋण भारी,
वरना यह महल नये युग का मिट्टी में आज मिला दोगी।

समता का, आज़ादी का नव-इतिहास बनाने को आयीं,
शोषण की रखी चिता पर तुम तो आग लगाने को आयीं,
है साथी जग का नव-यौवन, बदलो सब प्राचीन व्यवस्था,
वर्ग-भेद के बंधन सारे तुम आज मिटाने को आयीं।
●

जीवन-राग

यथार्थ

राह का
नहीं है अंत
चलते रहेंगे हम,

दूर तक फैला अँधेरा
नहीं होगा ज़रा भी कम,

टिमटिमाते दीप-से
अहर्निश
जलते रहेंगे हम!

साँसें मिली हैं
मात्र गिनती की
अचानक एक दिन
धड़कन हृदय की जायगी थम!
समझते-बूझते सब
मृत्यु को छलते रहेंगे हम।

हर चरण पर
मंज़िलें होती कहाँ हैं?
ज़िंदगी में
कंकड़ों के ढेर हैं
मोती कहाँ हैं?

लमहा

एक लमहा
सिर्फ़ एक लमहा
एकाएक छीन लेता है
ज़िंदगी!
हाँ, फ़क़त एक लमहा।

हर लमहा
अपना गूढ़ अर्थ रखता है,
अपना एक मुकम्मिल इतिहास
सिरजता है,
बार-बार बजता है।

इसलिए ज़रूरी है –
हर लमहे को भरपूर जियो,
जब-तक
कर दे न तुम्हारी सत्ता को
चूर-चूर वह।

हर लमहा
ख़ामोश फिसलता है
एक-सी नपी रफ़्तार से
अनगिनत हादसों को
अंकित करता हुआ,
अपने महत्त्व को
घोषित करता हुआ।

नहीं

लाखों लोगों के बीच
अपरिचित अजनबी
भला,
कोई कैसे रहे!

उमड़ती भीड़ में
अकेलेपन का दंश
भला,
कोई कैसे सहे!

असंख्य आवाज़ों के
शोर में
किसी से अपनी बात
भला,
कोई कैसे कहे!

●

अपेक्षा

कोई तो हमें चाहे
गाहे-ब-गाहे!

निपट सूनी अकेली ज़िंदगी में,
गहरे कूप में बरबस ढकेली ज़िंदगी में,
निष्ठुर घात-वार-प्रहार झेली ज़िंदगी में,
कोई तो हमें चाहे, सराहे!
किसी की तो मिले
शुभकामना / सद्‌भावना!

अभिशाप झुलसे लोक में
सर्वत्र छाये शोक में
हमदर्द हो कोई कभी तो!

तीव्र विद्युन्मय दमित वातावरण में
बेतहाशा गूँजती जब
मर्मवेधी चीख-आह-कराह,
अतिदाह में जलती विध्वंसित ज़िंदगी
आबद्ध कारागाह!
ऐसे तबाही के क्षणों में
चाह जगती है कि
कोई तो हमें चाहे
भले, गाहे-ब-गाहे!

●

चिर-वंचित

जीवन-भर रहा अकेला,
अनदेखा –
सतत उपेक्षित, घोर तिरस्कृत!

जीवन-भर
अपने बलबूते
झंझावातों का रेला झेला।
जीवन-भर
जस-का-तस
ठहरा रहा झमेला।
जीवन-भर
असह्य दुख-दर्द सहा,
नहीं किसी से भूल
शब्द एक कहा!
अभिशापों तापों
दहा-दहा!

रिसते घावों को
सहलाने वाला
कोई नहीं मिला –
पल-भर नहीं थमी
सर-सर वृष्टि-शिला!
एकाकी
फाँकी धूल अभावों में –
घर में : नगरों-गाँवों में!
यहाँ-वहाँ
जानें कहाँ-कहाँ!

जीवन्त

दर्द समेटे बैठा हूँ!
रे, कितना-कितना
दुःख समेटे बैठा हूँ!
बरसों-बरसों का दुख-दर्द
समेटे बैठा हूँ!

रातों-रातों जागा,
दिन-दिन भर जागा,
सारे जीवन जागा!
तन पर भूरी-भूरी गर्द
लपेटे बैठा हूँ!

दलदल-दलदल
पाँव धँसे हैं,
गर्दन पर, टख़नों पर
नाग कसे हैं,
काले-काले ज़हरीले
नाग कसे हैं!

शैया पर
आग बिछाए बैठा हूँ!
धायँ-धायँ!
दहकाए बैठा हूँ!

पूर्वाभास

बहुत पीछे
छोड़ आये हैं
प्रेम-संबंधों
शत्रुताओं के
अधजले शव!
खामोश है
बरसों, बरसों से
तड़पता / चीखता
दम तोड़ता रव!

इस समय तक –
सूख कर अवशेष
खो चुके होंगे हवा में!
बह चुके होंगे
अनगिनत बारिशों में!

जब से छोड़ आया
लौटा नहीं,
फिर, आज यह क्यों
प्रेत छाया सामने मेरे?

शायद,
हश्र अब होना यही है –
मेरे समूचे अस्तित्व का!
हर ज्वालामुखी को
एक दिन सुप्त होना है!
सदा को लुप्त होना है!
●

सार-तत्त्व

सकते में क्यों हो,
अरे!
नहीं आ सकते
जब काम
किसी के तुम –
कोई क्यों आये
पास तुम्हारे?
चुप रहो,
सब सहो।
पड़े रहो
मन मारे,
यहाँ-वहाँ।

कोई सुने
तुम्हारे अनुभव,
कोई सुने
तुम्हारी गाथा,
नहीं समय है
पास किसी के।
निष्फल –
ऐसा करना
आस किसी से।

अच्छा हो
सूने कमरे की दीवारों पर
शब्दांकित कर दो,
नाना रंगों से
चित्रांकित कर दो

अपना मन!
शायद, कोई कभी
पढ़े / गुने!
या
किसी रिकॉर्डिंग-डेक में
भर दो
अपनी करुण कहानी
बख़ुद ज़बानी!
शायद, कोई कभी
सुने!

लेकिन
निश्चिन्त रहो –
कहीं न फैले दुर्गन्ध
इसलिए तुरन्त
लोग तुम्हें
गड्ढ़े में गाड़ / दफ़न
या
कर सम्पन्न दहन
विधिवत्
कर देंगे ख़ाक / भस्म
ज़रूर!
विधिवत्
पूरी कर देंगे
आख़िरी रस्म
ज़रूर!

अनुभूति

जीवन-भर
अजीबोगरीब मूर्खताएँ करने के सिवा,
समाज का
थोपा हुआ कर्ज़ भरने के सिवा,
क्या किया?

ग़लतियाँ कीं
ख़ूब ग़लतियाँ कीं,
चूके, बार-बार चूके!

यों कहें - जिये;
लेकिन जीने का ढंग
कहाँ आया?
(ढोंग कहाँ आया!)
और अब सब-कुछ
भंग-रंग हो जाने के बाद –
दंग हूँ, बेहद दंग हूँ!
विवेक अपंग हूँ!

विश्वास किया लोगों पर,
अंध-विश्वास किया अपनों पर।
और धूर्त साफ़ कर गए सब
घर-बार,
बरबाद कर गए
जीवन का रूप-रंग सिँगार!

छद्म थे, मुखौटे थे,
सत्य के लिबास में झूठे थे,
अजब ग़ज़ब के थे!

ज़िंदगी गुज़र जाने के बाद,
नाटक की
फल-प्राप्ति / समाप्ति के क़रीब,
सलीब पर लटके हुए
सचाई से रू-ब-रू हुए जब –
अनुभूत हुए असंख्य विद्युत-झटके
तीव्र अग्नि-कण!
ऐंठते
दर्द से आहत तन-मन।

हैरतअंगेज़ है, सब!
सब, अद्‌भुत है!
अस्तित्व कहाँ हैं मेरा,
मेरा बुत है!
अब, पछतावे का कड़वा रस
पीने के सिवा
बचा क्या?
ज़माने को
न थी, न है
रत्ती-भर शर्म-हया!
●

बोध-प्राप्ति

परिपक्व,
कड़वे अनुभवों ने ही
बनाया है मुझे।

आदमी की क्षुद्रताओं ने
सही जीना
सिखाया है मुझे।

विश्वासघातों ने
मोह से कर मुक्त
भेद जीवन का
बताया है मुझे।

ज़माने ने सताया जब
बेइंतिहा,
काव्य में पीड़ा
तभी तो गा सका।

मर्माहत हुआ
अपने-परायों से
तभी तो मर्म
जीवन का / जगत् का
पा सका।
●

जीवन

हर आगत पल का
स्वागत है।

मेरे हाथ पकड़, उठता है दिन,
मेरे कंधों पर चढ़, बढ़ता है दिन।
मेरे मन से
अभिनव रचना करता है दिन,
मेरे तन से
सृष्टि नयी गढ़ता है दिन।

लड़ मेरे बल पर, जीता है दिन,
क्षण-क्षण मेरे जीने पर
जीता है दिन।

मेरी गति से
सार्थक होता काल अमर,
मैं ही हूँ
अविजित अविराम समर,
मेरे सम्मुख हर
पर्वत-बाधा नत है,
हर आगामी कल का
स्वागत है।
●

एकाकी

भव्य भवनों से भरे
रौशनी में तैरते
सौन्दर्य के प्रतिबिम्ब
इस नगर में
कौन है परिचित तुम्हारा?
कौन परिचित है?

जिससे सहज बोलें
मिलें जब-तब.....
हृदय के भेद खोलें।

जिसे समझें
आत्मीय.....विश्वसनीय।
नि:संकोच जिसको
लिखें प्रिय-पत्र,
या दूरवाणी से करें सम्पर्क,
जिसके द्वार पर जा
दें अधिकार से दस्तक
पुकारें नाम।

ऐसा कौन है
परिचित तुम्हारा?
अजनबी हैं सब,
अपरिचित हैं,
इतने बड़े-फैले नगर में।
कोई-कहीं
आता नहीं अपना नज़र में।
●

खंडित मन

विश्वास
टूटता है जब –
हिल उठती है धरती
अन्तर की,
अन्दर-ही-अन्दर
अपार रक्त-ज्वार बहता है।

लेकिन
व्यक्ति मौन रह
कुटिल नियति के
संहारक प्रहार सहता है,
मूक अर्द्ध-मृत
अंगारों की शैया पर
पल-पल दहता है।

चीत्कारों और कराहों की
पृष्ठभूमि पर
मर-मर जीता है,
अठ्हास भर-भर
काल-कूट पीता है।

विश्वास
टूटता है जब,
साथ
छूटता है जब।

संन्यास - चेतना

अपनों का
कुटिल विश्वासघाती खेल
जब झेल लेता है
सरल विश्वास-धर्मी आदमी,
तब.....
एकांत में
रोता-तड़पता है,
दुर्भाग्य पर
रह-रह कलपता है।

किंतु;
हत्या नहीं करता,
आत्म-हंता भी नहीं बनता;
अकेला
मानसिक नरकाग्नि में
खामोश जलता है,
स्वयं को दे असंगत सांत्वना
फिर-फिर भुलावे में भटकता है,
यों ही स्वयं को
बारम्बार छलता है।

उसे बुज़दिल नहीं समझो –
जानता है वह
कुछ हासिल नहीं होगा
किसी को कोसने से।
भागना क्या
भोगने से।

संबंध

विश्वास का जब दुर्ग
ढहता है –
आदमी लाचार हो
गहनतम वेदना....
मूक सहता है।
तैयार होता है –
निरर्थक ज़िंदगी
जीने के लिए,
प्रति-दिन
कड़वी घूँट पीने के लिए।
जीवन-शेष दहता है।
विश्वास का जब दुर्ग
ढहता है।

या फिर–
आत्म-हंता बन
शून्य में ख़मोश बहता है।
विसर्जित कर अस्तित्व
चुपचाप कहता है –

किसी का भी
अरे, विश्वास मत तोड़ो,
विश्वास बंधन है,
विश्वास जीवन है।
●

सहवर्ती

वेदना-धर्मी तरंगो!
और कितना
और कब-तक
गुदगुदाओगी मुझे?

कितना और
कब-तक और
बेसाख़्ता
हँसाओगी मुझे?

भुज-बन्ध में भर
और कितनी देर तक
और कितनी दूर तक
अनुरक्त सहयोगी
बनाओगी मुझे?

ओ वेदना-धर्मी तरंगो!
क्रूर
आहत-चेतना-कर्मी तरंगो!
●

अंतिम अनुरोध

निर्धन
बेहद निर्धन हूँ,
जाते-जाते
मुझको भी
जीने को
कुछ दे दो।
        जो सचमुच
        मेरा अपना हो
        सुखदायी
        मीठा सपना हो।
प्यासा
बेहद प्यासा हूँ,
जाते-जाते
मुझको भी
पीने को
कुछ दे दो।
        निर्मल गंगा-जल हो,
        झरता मधु-स्रव कल हो।
यों तो
अंतिम क्षण तक
तपना ही तपना है,
यात्रा-पथ पर
छाया तिमिर घना है।
एकाकी–
जीवन अभिशप्त बना,
हँसना-रोना सख़्त मना।
●

अभिप्रेत-वंचित

जब– वांछित / काम्य / अभीप्सित नहीं मिला,
जीने का क्या अर्थ रहा?
कोसों फैले
लह-लह लहराते उपवन में
जब– हृदय-समायी : मन भायी गंध-भरा
पुलकित पाटल नही खिला;
जीवन-भर का तप व्यर्थ रहा।
जीने का क्या अर्थ रहा,
जब अन्तर-तम में हर क्षण, हर पल
केवल मर्मान्तक त्रास सहा?

माना– बहुमूल्य अनेकों उपहार मिले,
हीरों के हार मिले,
अनगिनत सफलताओं पर
असंख्य कंठों से
नभ-भेदी जय-जयकार मिले,
सर्वोच्च शिखर सम्मान मिले,
पग-पग पर वरदान मिले।

किंतु; नहीं पाया मन-चाहा!
लगता है : दुर्लभ जीवन निष्कर्म गया,
जैसे भंग हुई लगभग साधित-कठिन तपस्या।

दहका दाह अभावों का,
हर सपना भस्म हुआ।
निर्धन, निष्फल, भिक्षु अकिंचन–
जैसे नहीं किसी की लगी दुआ।
●

वास्तविकता

सँभलते-सँभलते...
समय तीव्र गति से
गुज़रता गया।
सब व्यवस्थित
बिखरता गया।
हस्तगत था अरे जो
अचानक फिसलता गया ....
हर क़दम पर
सँभलते-सँभलते।

हर तार टूटा
सँवरते-सँवरते
कि फिर-फिर उलझता गया।
बंध हर
और कसता गया;
सूत्र क्रमशः सुलझते-सुलझते
उलझता गया,
हर क़दम पर
सँवरते-सँवरते।

ज़िंदगी कट गयी
ज़िंदगी
सीखते-सीखते,
खो गए कंठ-स्वर
चीखते-चीखते,
शास्त्र संगीत का
सीखते-सीखते।

विराम-पूर्व : 1

स्मृतियाँ – फूल हैं।
रंग-बिरंगे
खिलखिलाते फूल हैं।

स्मृतियाँ
जागती हैं जब –
लगता है कि मानों
सज गए हर द्वार बंदनवार
चारों ओर।
जीवन महकता है
सुगन्धों से,
जीवन छलकता है
मधुर मादन रसों से,
जीवन जगमगाता है
चटक नवजात रंगों से।

आदमी
ऐसे क्षणों में डूब जाता
स्वप्न के मधु लोक में
सुध-बुध भूल।

दीखता सर्वत्र
अनुकूल-ही-अनुकूल,
जैसे डालियों पर
झूलते हों फूल।
झूमते हों
प्रिय अनुभूतियों के फूल।

विराम - पूर्व : 2

स्मृतियाँ–शूल हैं।
धँसते नुकीले शूल हैं।

स्मृतियाँ
जागती हैं जब–
लगता है कि मानों
उड़ रही है धूल
चारों ओर,
जीवन दहकता
कष्टकर नरकाग्नि में,
जीवन लड़खड़ाता चीखता
सुनसान में,
भर हत हृदय में हूल।

आदमी
ऐसे क्षणों में टूट गिरता
तिमिरमय घन गुहा में
हिल उखड़ आमूल।
दीखता सर्वत्र
प्रतिकूल-ही-प्रतिकूल,
भेदते अन्त:करण को
तीव्र चुभते शूल।
अनइच्छित
दुखद अनुभूतियों कें शूल ।

सच है–

ज़िंदगी शुरू हुई
कि अन्त आ गया।
अभी-अभी हुई सुबह
कि अंधकार छा गया।
आसमान में
सतत बिखर-बिखर
किरण-किरण विलीन हो गयी
कि दूर-दूर तक
प्रखर प्रकाश की
अजस्र धार खो गयी!

यहाँ-वहाँ सभी जगह
अपार शोर था,
व्योम के हरेक छोर तक
लाल-लाल भोर था,
राग था, गीत था,
प्यार था, मीत था,
विलुप्त सब।

रुको ज़रा–
प्रकाश आयगा,
प्रकाश का प्रवाह आयगा।
नया विहान छायगा।

आत्म-संवेदन

हर आदमी
अपनी मुसीबत में अकेला है।
यातना की राशि–सारी मात्र उसकी है।
साँसत के क्षणों में
आदमी बिल्कुल अकेला है।

संकटों की रात
एकाकी बितानी है उसे,
घुप अँधेरे में
किरण उम्मीद की जगानी है उसे।
हर चोट सहलाना उसी को है,
हर सत्य बहलाना उसी को है।
उसे ही झेलने हैं हर क़दम पर
आँधियों के वार,
ओढ़ने हैं वक्ष पर चुपचाप
चारों ओर से बढ़ते-उमड़ते ज्वार।
सहनी उसे ही ठोकरें–
दुर्भाग्य की, अभिशप्त जीवन की,
कठिन चढ़ती-उतरती राह पर
कटु व्यंग्य करतीं क्रूर-क्रीड़ाएँ
अशुभ प्रारब्ध की।
उसे ही जानना है स्वाद कड़वी घूँट का,
अनुभूत करना है असर विष-कूट का।
अकेले – हाँ, अकेले ही।
क्योंकि सच है यह–
कि अपनी हर मुसीबत में
अकेला ही जिया है आदमी।

सामना

पत्थर-पत्थर जितना पटका
उतना उभरा।

पत्थर-पत्थर जितना कुचला
उतना उछला।

कीचड़-कीचड़ जितना धोया
उतना सुथरा।

कालिख-कालिख
जितना साना, जितना पोता
उतना निखरा।
असली सोना बन कर निखरा।

ज़ंजीरों से
तन को जब-जब
कस कर बाँधा
खुल कर बिखरा
उत्तर-दक्षिण-पूरब-पश्चिम
बह-बह बिखरा।
भारी भरकम
चंचल पारा बन कर लहरा।

हर ख़तरे से
जम कर खेला,
वार तुम्हारा
बढ़ कर झेला।

जीने के लिए

दहशत दिशाओं में
हवाएँ गर्म
गंधक से, गरल से;
किंतु मंज़िल तक
थपेड़े झेलकर
अविराम चलना है।

शिखाएँ अग्नि की
सैलाब-सी
रह-रह उमड़ती हैं;
किंतु मंज़िल तक
चटख कर टूटते शोलों-भरे
वीरान रास्तों से
गुज़रना है,
तपन सहना
झुलसना और जलना है।

सुरंगें हैं बिछी
बारूद की
चारों तरफ़
नदियों पहाड़ों जंगलों में;
किंतु मंज़िल तक
अकेले
खाइयों को – खंदकों को
लौह के पैरों तले
हर बार दलना है।

आग्रह

आदमी को
मत करो मजबूर।
इतना कि
बेइंसाफ़ियों को झेलते–
वह जानवर बन जाय।
या
बेइंतिहा
दर्द की अनुभूतियों को भोगते–
वह खण्डहर बन जाय।

आदमी को
मत करो मज़बूर
इतना कि उसको
ज़िंदगी
लगने लगे
चुभता हुआ
रिसता हुआ
नासूर।

आदमी को
मत करो
यों
इस क़दर मजबूर।

शुभैषी

बद्दुआओं का
असर होता अगर;
वीरान
यह आलम
कभी का
हो गया होता।

जाग उठता
हर क़दम पर
आदमी का दर्प-दुर्वासा।
चिरन्तन प्रेम का सोता
रसातल में
कभी का खो गया होता।

कहाँ हो तुम
पुनीत शकुन्तले!
अभिशाप की
जीवन्त पंकिल प्रतिक्रिया।
कहाँ हो तुम?

कामना

कभी तो ऐसा हो
कि हम
अपने को ऊँचा महसूस करें,
भले ही,
चंद लमहों के लिए।

कभी तो ऐसा हो
कि जी सकें हम
ज़िंदगी सहज
कृत्रिम मुसकान का
मुखौटा उतार कर,
बेहद तरस गया है
आदमी
सच्चे क़हक़हों के लिए।

कभी तो हम
रू-ब-रू हों
आत्मा के विस्तार से,
कितना तंग-दिल है
आदमी
अपरिचित
परोपकार से।

अंधकार भरे मन में
कभी तो
विद्युत कौंधे।
बड़ा महँगा
हो गया है
रोशनी का मोल;

अदा कर रहा
हर आदमी
एकमात्र कृपण महाजन का
मसख़रा रोल।

कभी तो हम
तिलांजलि दें
अपने बौनेपन को
अपने ओछेपन को,
और अनुभव करें
शिखर पर पहुँचने का उल्लास।

कभी तो हो हमें
भले ही, चंद लमहों के लिए,
ऊँचे होने का अहसास।

चरम-बिन्दु

एक लमहा फ़र्क है–
होने, न होने में।
बहुत सूक्ष्म सीमा है
अस्तित्व और अनस्तित्व के मध्य,
फ़र्क है
सिर्फ़ रेखा भर
हँसने और रोने में।

बहुत सूक्ष्म अन्तर है
अभिव्यक्ति में अन्त:करण की।
सम्भव नहीं है
खींचना सरहद
जनम की, मरण की।

स्थितियाँ –
समतुल्य हैं लगभग।
युग-युग सँजोयी साध
कब किस क्षण अचानक
मूर्त हो जाए – अमूर्त हो जाए;
एक पल झपकी बहुत है
पाने और खोने में।
एक लमहा
फ़र्क है -
होने – न होने में।

महत्त्वपूर्ण

चीज़ें–
कोई रूप-स्वरूप तो लें,
आख़िर कोई तो रूप लें।
हम पहुँचे तो सही
(ग़लत या सही)
किसी नतीज़े पर,
किसी घर.....दर
किसी ठिकाने भर।

यों वियाबान में
कब-तक भटकेंगे?
यों आग की भट्ठी में
कब-तक
तरल-तरल तड़पेंगे?
चीज़ें–
कोई शक़्ल तो लें।
आख़िर कोई तो शक़्ल लें।

मंसूबों की रेखाएँ–
स्पष्ट या धुँधला
कोई आकार-चिन्ह लें तो
आख़िर, कोई आकार-चिन्ह तो लें।
कि हम जान सकें
दिशाएँ
दूरियाँ
विस्तार।

विचार–

अमूर्त विचार साकार तो हों,
चिंतन-लोक की गहराइयों में
किसी तरह तो हों साकार
अमूर्त विचार,
कि हम बना सकें दिमाग़
और पहना सकें
उन्हें
कोई भाषा-प्रारूप।

कहीं से
कोई तो रोशनी की किरन फूटे
अन्धकार तो छँटे
और हम अन्ध-कूप से
आएँ बाहर,
कम-से-कम बाहर तो आएँ!

चीजें–
रंग-रूप तो लें,
हवा-धूप तो लें।
चीज़ें–
कोई रूप-स्वरूप तो लें।
●

विश्लेषण

गँवाया ही गँवाया,
कुछ नहीं पाया,
ज़िंदगी में कुछ नहीं पाया।

जो बचा पाये
नुकीले शूल हैं,
जो उठा लाये
बेरंग बासी फूल हैं,
  पास में
  देखो धूल
  कितनी धूल है!

राह पर
हर मोड़ पर,
घर में
या कि बाहर,
हाट में, बाज़ार में
विश्वास के हाथों
सदा लुटते रहे।
अपनों से
परायों से
हमेशा
छल-कपट की
तेज़ धारों की कटारों के तले
बेहद सरलता से
अरे, कटते रहे!

लोगों की

तमाम रची-बुनी
चतुराइयों-चालाकियों से
उनकी हीनताओं-क्षुद्रताओं से
बहुत चाहा–
बचना;
किंतु
ओढ़ी सौम्यता शालीनता की
आरोपित मुखौटों की
कठिन
बेहद कठिन
पहचानना रचना।
उनके छद्म से बचना।

नहीं है शेष
कोई भी विरासत,
ढह गयी
जो
श्रम-पसीने से
बनायी थी इमारत!
●

एक साध : अधूरी

जी करता है –
आज का दिन
ज़िंदगी की कश-म-कश से
  हटकर
बंद कमरे में
सोए-सोए गुज़ार दूँ।

न जाने कितने बरसों से
निश्चिन्त बेख़बर हो
आदिम-राग का, अनुराग का
अहसास भर
सोया नहीं।

जी करता है –
आज का दिन
निश्चेष्ट शिथिल चुप रह
चित्रमाला में अतीत की
खोए-खोए गुज़ार दूँ।

न जाने
कितने बरसों से
उजड़े गाँवों की राहों में
छूटे नगरों की बाँहों में
खोया नहीं।

जी करता है –
आज का दिन
सारे वादे, काम, प्रतिज्ञाएँ

भूल कर
गंगा की लहरों-सी
तुम्हारी याद में
रोए-रोए गुज़ार दूँ।

न जाने
कितने बरसों से
तुम्हारी तसवीर से
रू-ब-रू हो
रोया नहीं।

●

कश–म–कश

बरसों से नहीं देखा –
सूर्योदय / सूर्यास्त
चाँद–तारों से भरा आकाश,
नहीं देखा
बरसों से नहीं देखा!

कलियों को चटकते,
फूलों को महकते
डालियों पर झूमते,
तितलियों–मधुमक्खियों को चूमते।
बरसों से नहीं देखा!

मेह में न्हाया न बरसों से
पुर–जोश कोई गीत भी गाया
न बरसों से!

न देखे एक क्षण भी
मेहँदी से महमहाते हाथ गदराए,
महावर से रँगे झनकारते
दो – पैर भरमाए।
न देखे आह, बरसों से!

कुछ इस क़दर उलझा रहा
ज़िंदगी की कश–म–कश में –
देखना / महसूसना
जैसे तनिक भी
था न वश में।

निष्कर्ष

ज़िंदगी – वीरान मरघट–सी,
ज़िंदगी – अभिशप्त बोझिल और एकाकी महावट–सी।
ज़िंदगी – मनहूसियत का दूसरा है नाम,
ज़िंदगी – जन्मान्तरों के अशुभ पापों का दुखद परिणाम।
ज़िंदगी – दोपहर की चिलचिलाती धूप का अहसास,
ज़िंदगी – कंठ–चुभती सूचियों का बोध, तीखी प्यास।
ज़िंदगी – ठहराव, साधन–हीन, रिसता घाव,
ज़िंदगी – अनचहा संन्यास, मात्र तनाव।

संधान

इस बीच :
जीये किस तरह–
हम ही जानते हैं।
कितना भयावह था
लहरता-उफ़नता-टूटता सैलाब–
हम ही जानते हैं।

अर्थ :
जीवन का : जगत् का
गूढ़ था जो आज तक
अब हम
उसे अच्छी तरह से
हाँ, बहुत अच्छी तरह से
जानते हैं।

असंख्य परतों को लपेटे
आदमी अब पारदर्शी है,
भीतर और बाहर से
उसे हम
सही, बिलकुल सही
पहचानते हैं।

आओ, तुम्हें–
हाफ़ँते, दम तोड़ते
तूफ़ान की गाथा सुनाएँ।
जलती ज़िंदगी से जूझते
इंसान की गाथा सुनाएँ।

बाधाएँ : चुनौती हैं!

बाधाएँ–
निरुत्साहित नहीं करतीं हमें,
प्रतिक्षण बनातीं बल सजग।
कठिनाइयों के सामने
पग डगमगाते हैं नहीं,
प्रत्युत् लगा कर पंख बिजली के
धरा-आकाश का विस्तार लेते नाप।

बाधाएँ–
'विकट, दुर्लंध्य, अविजित'
है निरा अपलाप।

बाधाएँ–
बनातीं परमुखापेक्षी नहीं हमको,
बाधाएँ–
बनाती हैं न किंचित दीन
उद्यमहीन हमको।

वे जगातीं
सुप्त अन्तर-शक्तियाँ सारी,
न भय रहता, न लाचारी।
कौंधती बिजली सबल तन में,
उभरते दृढ़ नये संकल्प मन में।

बाधाएँ : चुनौती हैं!
इन्हें स्वीकारना–
पर्याय : मानवता-महत्ता का।
इन्हें स्वीकारना –

उद्‌घोष : जीवन की चिरन्तन
ऊर्ध्व सत्ता का।
इन्हें स्वीकारना–
पहचान : तेजस्वी, सतत गतिमान,
मानव के पराक्रम की।
इन्हें स्वीकारना–
अनुभूति :
चिर-परिचित
मनुज-इतिहास-प्रमाणित
अथक श्रम की।

बाधाएँ–
हतोत्साहित नहीं करतीं कभी
  बाधाहरों को।
वे बनातीं
और भी दृढ़ धारणाओं को।

कठिन के सामने मेधा
कभी होती नहीं दूषित,
वरन् उद्‌भावना उन्मेष से भर
और हो उठती प्रखर।

प्रत्येक बाधा हीन होगी,
नष्टशून्य-विलीन होगी।
●

पुनर्वार

मैं
एक वीरान बीहड़ जंगल में रहता हूँ,
अहर्निश निपट एकाकीपन की
असह्य पीड़ा सहता हूँ।

मैंने यह यंत्रणा-गृह
कोई स्वेच्छा से नहीं वरा,
मैंने कभी नहीं चाहा
निर्लिप्त निस्संग
जीवन का यह
जँगलेदार कठघरा।
जिसमें शंकाओं से भरा
सन्नाटा जगता है,
जीना
अर्थ-हीन अकारण-सा लगता है।

समय-असमय जब दहक उठते हैं
मुझमें
हिंस्र पशुता के अग्नि-पर्वत,
प्रतिशोध-प्रतिहिंसा के लावा नद
जब लहक उठते हैं
आहत क्षत-विक्षत चेतना पर,
तब यह
वीरान बीहड़ जंगल ही
निरापद प्रतीत होता है।

(सचमुच, कितना बेबस
मानव के लिए अतीत होता है!)

यह गुंजान वन / यह अकेलापन
मेरी विवशता है।
मुझे विवशता की पीड़ा सहने दो,
दहने दो, दहने दो।

जंगल जल जाएंगे,
लौह-कठघरे गल जाएंगे।
मैं आऊंगा, फिर आऊंगा,
निज को विसर्जित कर
सामूहिक चेतना का अंग बन
अन्तहीन भीड़ में मिल जाऊंगा।

स्व के दंश जहाँ
तिरोहित हो जाएंगे,
या अवचेतना की
अथाह गहराइयों में सो जाएंगे।
●

अपेक्षित

सरस अधरों पर
प्रफुल्लित कंज-सी मुसकान हो
या उमंगों से भरा मधु-गान हो।

मुसकान की / मधु-गान की
अभिशप्त इस युग में कमी है,
अत्यधिक अनवधि कमी है!

मात्र –
नीरव नील होठों पर
बड़ी गहरी परत हिम की जमी है।

प्रत्येक उर में
वेदना की खड़खड़ाती है फ़सल,
आह्लाद-बीजों का नहीं अस्तित्व,
केवल झनझनाते अंग,
मानव – चित्र-रेखा-वत्
खोजता सतरंग।
●

अनुदर्शन

उड़ गए
ज़िंदगी के बरस रे कई!
राग सूनी
अभावों भरी
ज़िंदगी के बरस
हाँ, कई उड़ गए!

लौट कर आयगा अब नहीं
वक़्त
जो– धूल में, धूप में खो गया,
स्याह में सो गया।

शोर में चीखती ही रही ज़िंदगी,
हर क़दम पर विवश,
कोशिशों में अधिक विवश।

गा न पाया कभी
एक भी गीत मैं हर्ष का,
एक भी गीत मैं दर्द का।

गूँजता रव रहा
मात्र : संघर्ष....संघर्ष... संघर्ष।
विश्रान्ति के पथ सभी मुड़ गए।

ज़िंदगी के बरस,
रे कई
देखते...देखते उड़ गए!
●

वेदना : एक दृष्टिकोण

हृदय में दर्द है
तो मुसकराओ।

दर्द यदि
अभिव्यक्त–
मुख पर एक हलकी-सी
शिकन के रूप में भी,
या सजगता की
तनिक पहचान से उभरे
दमन के रूप में भी–

निंद्य है।
धिक् है।
स्खलित पौरुष्य।

उर में वेदना है
तो सहज कुछ इस तरह गाओ
कि अनुमिति तक न हो उसकी
किसी को।

सिक्त मधुजा कण्ठ से
उल्लास गाओ।
पीत पतझर की
तनिक भी खड़खड़ाहट हो नहीं,
मधुमास गाओ।
सिसकियों को
तलघरों में बन्द कर
नव नूपुरों की

गूँजती झनकार गाओ।
शून्य जीवन की
व्यथा-बोझिल उदासी भूलकर
अविराम हँसती गहगहाती
ज़िंदगी गाओ।
महत् वरदान-सा जो प्राप्त
वह अनमोल
जीवन-गंधमादन से महकता
प्यार गाओ।

यदि हृदय में दर्द है
तो मुसकराओ।
दूधिया,
सितप्रभ,
रुपहली
ज्योत्स्ना भर मुसकराओ।
●

ओ भवितव्य के अश्वो!

ओ भवितव्य के अश्वो!
तुम्हारी रास
हम
आश्वस्त अंतर से सधे
मज़बूत हाथों से दबा
हर बार मोड़ेंगे।

वर्चस्वी,
धरा के पुत्र हम
दुर्धर्ष,
श्रम के बन्धु हम
तारुण्य के अविचल उपासक
हम तुम्हारी रास
ओ भवितव्य के अश्वो!
सुनो, हर बार मोड़ेंगे।

ओ नियति के स्थिर ग्रहो!
श्रम-भाव तेजोदृप्त
हम
अक्षय तुम्हारी ज्योति
ग्रस कर आज छोड़ेंगे।
तितिक्ष अडिग
हमें दुर्ग्रह नहीं अब
अंतरिक्ष अगम्य।
निश्चय,
ओ नियति के पूर्व निर्धारित ग्रहो!
हम....
हम तुम्हारी ज्योति

ग्रस कर आज छोड़ेंगे।

ओ अदृष्ट की लिपियो!
कठिन प्रारब्ध हाहाकार के
अविजेय दुर्गो!
हम उमड़ श्रम-धार से
हर हीन होनी की
लिखावट को मिटाएंगे,
मदिर मधुमान श्रम संगीत से
हम
हर तबाही के अभेदे दुर्ग तोड़ेंगे।
ओ भवितव्य के अश्वो!
तुम्हारी रास मोड़ेंगे।

आस्था

सींचो, कण-कण को सींचो।
हर सूखे बिरवे को पानी दो,
टूटे उखड़े झाड़ों को
अभिनव बल
फिर-फिर बढ़ने की तेज़ रवानी दो।
हर सूखे बिरवे को पानी दो।

नंगी-नंगी शाखों को
जल-कण मुक्ता भूषण दो,
चिर बाँझ धरा को
जल का आलिंगन दो
शीतल आलिंगन दो।
शायद, गहरी-गहरी परतों के नीचे
जीवन सोया हो,
तम के गलियारों में खोया हो।

सींचो, अन्तस् की निष्ठा से सींचो,
शायद, चटानों को फोड़ कहीं,
नव अंकुर डहडहा उठें,
बाँझ धरा का गर्भस्थल
नूतन जीवन से कसमसा उठे।

सींचो, कण-कण को सींचो।
हर मिटी में गर्मी है,
हर मिटी पूत प्रसव-धर्मी है!

आस्था का उपहार

भाग्य से अथवा जगत से
हर प्रताड़ित व्यक्ति को
आजन्म संचित स्नेह मेरा
है समर्पित।

लक्ष्य हैं जो
सृष्टि के अव्यक्त निर्मम हास के
या जगत उपहास के
प्राण गौरव की सुरक्षा के लिए
लघु गेह मेरा
है समर्पित।

ओ, विश्व-भर के
पददलित पीड़ित पराजित मानवो!
जीवन्त नव आस्था
नये विश्वास के
मद महकते उत्फुल्ल गुलदस्ते
तुम्हारे साधु स्वागत में
समर्पित हैं।

जीवन को सजा लो,
लोक की मधु-गंध
प्राणों में बसा लो।

आदमी और स्वप्न

आदमी का प्यार सपनों से
सनातन है।

मृत्यु के भी सामने
वह,
मग्न होकर देखता है स्वप्न!
सपने देखना, मानों,
जीवन की निशानी है,
यम की पराजय की कहानी है।

सपने आदमी को
मुसकराहट—चाह देते हैं,
आँसू—आह देते हैं।

हृदय में भर जुन्हाई-ज्वार,
जीने की ललक उत्पन्न कर,
पतझार को
मधुमास के रंगीन-चित्रों का
नया उपहार देते हैं,
विजय का हार देते हैं!

सँजोओ, स्वप्न की सौगात,
महँगी है।
मिली नेमत,
इसे दिन-रात पलकों में सहेजो।
'स्वप्नदर्शी' शब्द
परिभाषा 'मनुज' की,
गति-प्रगति का

प्रेरणा-आधार,
संकट-सिंधु में
संसार-नौका की
सबल पतवार!

गौरवपूर्ण सुन्दरतम विशेषण।
स्वप्न-एषण और आकर्षण
सनातन है, सनातन है।
आदमी का प्यार सपनों से
सनातन है।

●

जीवन : एक अनुभूति

बिखरता जा रहा सब कुछ
सिमटता कुछ नहीं।

ज़िंदगी :
एक बेतरतीब सूने बंद कमरे की तरह,
दूर सिकता पर पड़े तल-भग्न बजरे की तरह,
हर तरफ़ से कस रहीं गाँठें
सुलझता कुछ नहीं।

ज़िंदगी क्या?
धूमकेतन-सी अवांछित
जानकी-सी त्रस्त लांछित,
किस तरह हो संतरण
भारी भँवर, भारी भँवर।
हो प्रफुल्लित किस तरह बेचैन मन
तापित लहर, शापित लहर।

ज़िंदगी :
बदरंग केनवस की तरह
धूल की परतें लपेटे
किचकिचाहट से भरी,
स्वप्नवत है
वाटिका पुष्पित हरी।
हर पक्ष भावी का भटकता है
सँभलता कुछ नहीं।

पर,
जी रहा हूँ

आग पर शैया बिछाये।
पर,
जी रहा हूँ
शीश पर पर्वत उठाये।
पर,
जी रहा हूँ
कटु हलाहल कंठ का गहना बनाये।

ज़िंदगी में बस
जटिलता ही जटिलता है,
सरलता कुछ नहीं।

गाओ

गाओ कि जीवन गीत बन जाए!

हर क़दम पर आदमी मजबूर है,
हर रुपहला प्यार-सपना चूर है,
आँसुओं के सिन्धु में डूबा हुआ
आस-सूरज दूर, बेहद दूर है,
गाओ कि कण-कण मीत बन जाए!

हर तरफ़ छाया अँधेरा है घना,
हर हृदय हत, वेदना से है सना,
संकटों का मूक साया उम्र भर
क्या रहेगा शीश पर यों ही बना?
गाओ, पराजय–जीत बन जाए!

साँस पर छायी विवशता की घुटन,
जल रही है ज़िंदगी भर कर जलन,
विष भरे घन-रज कणों से है भरा
आदमी की चाहनाओं का गगन,
गाओ कि दुख संगीत बन जाए!

हिम्मत न हारो!

हिम्मत न हारो!
कंटकों के बीच
मन-पाटल खिलेगा एक दिन,
हिम्मत न हारो!

यदि आँधियाँ आएँ तुम्हारे पास
उनसे खेल लो,
जितनी बड़ी चट्टान
वे फेंकें तुम्हारी ओर
उसको झेल लो।

तुम तो जानते हो
आजकल बरसात के दिन हैं;
गगन में खलबली है,
दौर-दौरा है घटाओं का,
तुम्हारे सामने अस्तित्व हो उनका
सदाओं का।
लरजती बिजलियाँ;
माना,
तुम्हारे सामने हो खेल
आतिशबाज़ियाँ नाना।

निरंतर राह पर चलते रहोगे तो
तुम्हारा लक्ष्य तुमसे आ मिलेगा एक दिन।
हिम्मत न हारो!
कंटकों के बीच मन-पाटल खिलेगा एक दिन।
हिम्मत न हारो!

संकल्प-विकल्प

आज यह कैसी थकावट?
कर रही प्रति अंग रग-रग को शिथिल।

मन अचेतन भाव-जड़ता पर गया रुक,
ये उनींदे शांत बोझिल नैन भी थक-से गए।

क्यों आज मेरे प्राण का
उच्छ्वास हलका हो रहा है,
गूँजते हैं क्यों नहीं स्वर व्योम में?
पिघलता जा रहा विश्वास मन का
मोम-सा बन,
और भावी आश भी क्यों दूर तारा-सी
दृष्टि-पथ से हो रही ओझल?

व जीवन का धरातल
धूल में कंटक छिपाये
राह मेरी कर रहा दुर्गम।

गगन की इन घहरती आँधियों से
आज क्यों यह दीप प्राणों का
उठा रह-रह सहम?

रे सत्य है,
इतना न हो सकता कभी भ्रम।

भूल जाऊँ?
या थकावट से शिथिल होकर
नींद की निस्पंद श्वासों की

अनेकों झाड़ियों में
स्वप्न की डोरी बनाकर
झूल लूँ?
इस सत्य के सम्मुख
झुकाकर शीश अपना
आत्म-गति को
(रुक रही जो)
रोक लूँ?
या
सत्य की हर चाल से
संघर्ष कर लूँ
आत्मबल से आज?

परिचय

स्नेह की मधु-धार हूँ मैं।

पास जो आये न मेरे,
दूर का परिचय रखा बस,
भावना से हीन समझा
की उपेक्षा व्यंग्य से हँस,
जान पाये वे भला कब प्रेम-पारावार हूँ मैं।

देह निर्बल देखकर जो
एक उड़ती-सी नज़र से,
फेरकर मुख, हो गए उस
क्षण अलग मेरी डगर से,
जान पाये वे भला कब शक्ति का संसार हूँ मैं।

मुसकराया मैं न किंचित,
क्योंकि था अति क्षुब्ध-जीवन,
इसलिये जो लोग मुझको
हैं समझते मूक पाहन,
जान पाये वे भला कब बीन की झंकार हूँ मैं।

कूल ही पर छोड़ मुझको
चल पड़े जो नाव लेकर,
ज्वार-लहरों में गए फँस,
अब गरजता सिंधु जिन पर,
जान पाये वे भला कब मुक्ति की पतवार हूँ मैं।

स्थितियाँ और द्वन्द्व

निश्चिंत भी, भयभीत भी!

यह ज़िंदगी जब दाँव पर,
संघर्ष है प्रति पाँव पर,
नव भैरवी भी बज रही,
रुकना न सम्भव है कहीं
है हार भी औ' जीत भी!

हम सुन रहे हैं राग सब
अनुराग और विराग सब
कोई बुलाता–लौट आ,
कोई सजाता कह, 'विदा।'
रोदन करुण भी, गीत भी!

शिव में अशिव आभास भी,
छलना जहाँ–विश्वास भी,
अभिशाप भी वरदान है,
मिटी निरीह महान है,
अपवित्र और पुनीत भी!

ललकारता है कौन यह?
पुचकारता है कौन यह?
मानव विरोधी द्वन्द्व में,
मानव सदा आनन्द में,
यह शत्रु भी है मीत भी!

●

प्रणय / प्रेम की कविताएँ

राग-संवेदन / 1

सब भूल जाते हैं ...
केवल
याद रहते हैं
आत्मीयता से सिक्त
कुछ क्षण राग के,
संवेदना अनुभूत
रिश्तों की दहकती आग के!

आदमी के आदमी से
प्रीति के सम्बन्ध,
जीती-भोगती सह-राह के
अनुबन्ध!
केवल याद आते हैं!
सदा।

जब-तब
बरस जाते
व्यथा-बोझिल
निशा के
जागते एकान्त क्षण में,
डूबते निस्संग भारी
क्लान्त मन में!
अश्रु बन
पावन!
●

राग-संवेदन / 2

तुम –
बजाओ साज़ दिल का,
ज़िंदगी का गीत
मैं – गाऊँ!

उम्र यों ढलती रहे,
उर में
धड़कती साँस यह चलती रहे!
दोनों हृदय में
स्नेह की बाती लहर बलती रहे!
जीवन्त प्राणों में परस्पर
भावना-संवेदना पलती रहे!

तुम –
सुनाओ इक कहानी प्यार की मोहक,
सुन जिसे
मैं – चैन से कुछ क्षण कि सो जाऊँ!
दर्द सारा भूल कर
मधु-स्वप्न में
बेफ़िक्र खो जाऊँ!

तुम –
बहाओ प्यार-जल की
छलछलाती धार,
चरणों पर तुम्हारे
स्वर्ग-वैभव
मैं – झुका लाऊँ!
●

जिजीविषु

अचानक
आज जब देखा तुम्हें –
कुछ और जीना चाहता हूँ!

गुज़र कर
बहुत लम्बी कठिन सुनसान
जीवन-राह से,
प्रतिपल झुलस कर
ज़िंदगी के सत्य से
उसके दहकते दाह से,
अचानक
आज जब देखा तुम्हें –

कड़वाहट भरी इस ज़िंदगी में
विष और पीना चाहता हूँ!
कुछ और जीना चाहता हूँ!

अभी तक
प्रेय!
कहाँ थीं तुम?
नील-कुसुम!

●

निष्कर्ष

ज़िंदगी में प्यार से सुन्दर
कहीं
कुछ भी नहीं!
कुछ भी नहीं!

जन्म यदि वरदान है तो
इसलिए ही, इसलिए।
मोह से मोहक सुगंधित
प्राण हैं तो इसलिए।

ज़िंदगी में प्यार से सुखकर
कहीं
कुछ भी नहीं!
कुछ भी नहीं!

प्यार है तो ज़िंदगी महका
हुआ इक फूल है,
अन्यथा; हर क्षण, हृदय में
तीव्र चुभता शूल है।

ज़िंदगी में प्यार से दुष्कर
कहीं
कुछ भी नहीं!
कुछ भी नहीं!

●

तुम....

जब-जब मुसकुराती हो
बहुत भाती हो!
तुम हर बात पर
क्यों मुसकुराती हो?

जब-जब
सामने जा स्वच्छ दर्पण के
सुमुखि! शृंगार करती हो,
धनुषाकार भौंहों-मध्य
केशों से अनावृत भाल पर
नव चाँद की बिन्दी लगाती हो,
स्वयं में भूल
फूली ना समाती हो
बहुत भाती हो!

नगर से दूर जा कर
फिर नदी की धार में
मोहक किसी की याद में
दीपक बहाती हो
बहुत भाती हो!
मुग्धा लाजवंती तुम
बहुत भाती हो!
जब बार-बार
मधुर स्वरों से
मर्म-भेदी
चिर-सनातन प्यार का
मधु-गीत गाती हो–
पूजा-गीत गाती हो
बहुत भाती हो!

एक रात

अँधियारे जीवन-नभ में
बिजुरी-सी चमक गयीं तुम!

सावन झूला झूला जब
बाँहों में रमक गयीं तुम!

कजली बाहर गूँजी जब
श्रुति-स्वर-सी गमक गयीं तुम!

महकी गंध त्रियामा जब
पायल-सी झमक गयीं तुम!

तुलसी-चौरे पर आ कर
अलबेली छमक गयीं तुम!

सूने घर-आँगन में आ
दीपक-सी दमक गयीं तुम!

सहसा

आज तुम्हारी आयी याद,
मन में गूँजा अनहद नाद!
बरसों बाद
बरसों बाद!

साथ तुम्हारा केवल सच था,
हाथ तुम्हारा सहज कवच था,
सब-कुछ पीछे छूट गया, पर
जीवित पल-पल का उन्माद!
आज तुम्हारी आयी याद!

बीत गए युग होते-होते,
रातों-रातों सपने बोते,
लेकिन उन मधु चल-चित्रों से
जीवन रहा सदा आबाद!
आज तुम्हारी आयी याद!

आमने-सामने

जी भर
आज बोलेंगे,
परस्पर अंक में आबद्ध
सारी रात बोलेंगे,
जी भर
बात बालेंगे।

विश्वास की
सम-भूमि पर हम
एक-धर्मा
हीनता की ग्रंथियाँ
संदेह के निर्मोक खोलेंगे,
सहज निर्व्याज खोलेंगे।

जी भर
आज जी लेंगे,
सुधा के पात्र
पी लेंगे।

बस, एक बार!

स्नेह-तरलित दो नयन
मुझको देख लें–
बस,
एक बार!

दो
प्रणय-कम्पित हाथ
मुझको थाम लें–
बस,
एक बार!

सर्पिल भुजाएँ दो
मुझको बाँध लें–
बस,
एक बार!

दो
अग्निवाही होंठ
मुझको चूम लें–
बस,
एक बार!

निकष

किसी मधु-गन्धिका के
प्यार की ऊष्मा-किरण
मुझको
छुए तो–
  मोम हूँ!

किसी मुग्धा
चकोरी के
अबोध
अधीर
भटके
दो नयन
मुझ पर
पड़ें तो–
  सोम हूँ!

पुनरपि

मानस में
अप्रत्याशित अतिथि से तुम
अचानक आ गए!
माना–
नहीं था पूर्व-प्रस्तुत
आर्द्र अगवानी सजाये,
हार कलियों का लिए,
हर द्वार बन्दनवार बाँधे,
प्रति पलक
उत्सुक प्रतीक्षा में।

तुम्हीं प्रिय पात्र,
अभ्यागत!
बताओ –
नहीं हूँ क्या
सदा से स्वागतिक मैं तुम्हारा?

हर्ष-पुलकित हूँ,
अकृत्रिम भूमि पर मेरी
सहज बन
अवतरित हो तुम।
सुपर्वा
धन्य हूँ,
कृत-कृत्य हूँ!

पर,
यह सकुच कैसी?
रुको कुछ देर

अनुभूत होने दो
अमित अनमोल क्षण ये।

जानता हूँ–
तुम प्रवासी हो,
अतिथि हो
चाहकर भी
मानवी आसक्ति के
सुकुमार बन्धन में
बँधोगे कब?

अरे, फिर भी....
तनिक... अनुरोध
फिर भी ....!

तिघिरा की एक शाम

(चित्र : एक)

तिघिरा के शान्त जल में
तुम्हारा गोरा मुखड़ा
रहस्य भरे
निर्निमेष मुझे देखता
तैर रहा है।

सुडौल मांसल गोरी बाँह उठा
अरुणिम करतल पर हिलती
चक्रोंवाली अंगुलियाँ
दूर तिघिरा के वक्षस्थल से
मुझे बुलातीं।

मैं –
जो तट पर।
देख रहा छबि
बाइनॉक्युलर लगाये
वासना बोझिल आँखों पर!

तिघिरा की एक शाम

(चित्र : दो)

तिघिरा के सँकरे पुल पर
नमित नयन
सहमी-सहमी
तुम।

तेज़ हवा में लहराते केश,
सुगठित अंगों को
अंकित करता
फर-फर उड़ता
कांजीवरम् की साड़ी का फैलाव,
दो फुर्तीले हाथों का
कितना असफल दुराव!

हौले-हौले
चलते
नंगे गदराए गोरे पैर,
सपने जैसी
अद्‌भुत रँगरेली रोमांचक सैर!

जिजीविषु

गहरा अँधेरा
साँय....साँय पवन,
भवावह शाप-सा छाया गगन,
अति शीत के क्षण।
पर, जियो इस आस पर–
शायद कि कोई
एक दिन बाले रवि-किरण-सा
राग-रंजित हेम मंगल-दीप!

सुनसान पथ पर
मूक एकाकी हृदय तुम,
भारवत् तन, व्यर्थ जीवन।
पर, चलो इस आस पर–
शायद किसी क्षण
चिर-प्रतीक्षित अजनबी के
चरण नि:सृत कर उठें संगीत!

खो गया मधुमास,
पतझर मात्र पतझर,
फूल बदले शूल में
सपने गए सन धूल में।
ओ आत्महंता!
द्वार-वातायन करो मत बंद,
शायद–समदुखी कोई
भटकती ज़िंदगी आ
कक्ष को रँग दे
सुना स्वर्गिक सुधाधर गीत!

प्रधूपिता से

ओ विपथगे!
जग-तिरस्कृत,
आ
माँग को
सिन्दूर से भर दूँ!

सहचरी ओ!
मूक रोदन की –
कंठ को
नाना नये स्वर दूँ!

ओ धनी!
अभिशप्त जीवन की –
आ
तुझे उल्लास का वर दूँ!

ओ नमित निर्वासिता!
आ ... आ
नील कमलों से
घिरा घर दूँ!

वंचिता ओ!
उपहसित नारी–
अरे आ
रुक्ष केशों पर
विकंपित स्नेह-पूरित
उँगलियाँ धर दूँ!

निवेदन

फूल जो मुरझा रहे
जग-वल्लरी पर
  अधखिले
कारण उसी का खोजता हूँ।

हे प्राण!
मुझको माफ़ करना
यदि तुम्हारे गीत कुछ दिन
मैं न गाऊँ।
स्वर्ण आभा-सा
सुवासित तन तुम्हारा देख
अनदेखा करूँ,
छवि पर न मोहित हो
तनिक भी मुसकराऊँ।

फूल जब मुरझा रहे
वसुधा बनी विधवा
सुमुखि।
फिर अर्थ क्या शृंगार का,
पग-नूपुरों की गूँजती झंकार का?

हर फूल खिलने दो ज़रा,
डालियों पर प्यार हिलने दो ज़रा!

कौन हो तुम?

अँधेरी रात के एकांत में
अनजान
दूरागत.....
किसी संगीत से मोहक
मधुर सद्-सांत्वना के बोल
विषधर तिक्त अंतर में
अरे! किसने दिये हैं घोल?

कौन?
कौन हो तुम?
अवसन्न जीवन-मेघ में
नीलांजना-सी झाँकतीं
आबंध वातायन हृदय का खोल।

सृष्टि की गहरी घुटन में,
दाह से झुलसे गगन में,
कौन तुम जातीं
सजल पुरवा सरीखी डोल?

कौन हो तुम?
कौन हो?
संवेद्य मानस-चेतना को,
शांत करती वेदना को।

स्वीकार लो

मेरी कामनाएँ :
गगन के वक्ष पर झिलमिल
सितारों की तरह!

मेरी वासनाएँ :
हिमालय से प्रवाहित
वेगगा भागीरथी की
शुभ्र धारों की तरह!

मेरी भावनाएँ :
महकते-सौंधते
उत्फुल्ल पाटल से विनिर्मित
रूपधर सद्यस्क हारों की तरह!

तुम्हारी अर्चना आराधना में
समर्पित हैं।
अलौकिक शोभिनी!
रमनी सुनहरी दीपकलिका से
हृदय का कक्ष ज्योतित है।

इस जन्म में
स्वीकार लो
स्वीकार लो
मेरा अछूता प्यार लो!

अभिरमण

कल सुबह से रात तक
कुछ कर न पाया
कल्पना के सिंधु में
युग-युग सहेजी आस के दीपक
बहाने के सिवा!
हृदय की भित्ति पर
जीवित अजन्ता-चित्र... रेखाएँ
बनाने के सिवा!

किस क़दर
भरमाया
तुम्हारे रूप ने!

कल सुबह से रात तक
कुछ कर न पाया,
सिर्फ़
कल्पना के स्वर्ग में
स्वच्छंद सैलानी-सरीखा
घूमा किया।
नशीली-झूमती
मकरंद-वेष्टित
शुभ्र कलियों के कपोलों को
मधुप के प्यार से
चूमा किया।

किस क़दर
मुझको सताया है
तुम्हारे रूप ने!

कल सुबह से रात तक
कुछ कर न पाया
भावना के व्योम में
भोले कपोतों के उड़ाने के सिवा।
अभावों की धधकती आग से
मन को जुड़ाने के सिवा।
भटका किया,
हर पल
तुम्हारी याद में अटका किया।

किस क़दर
यह कस दिया तन मन
तुम्हारे रूप ने!

कौन तुम

कौन तुम अरुणिम उषा-सी मन-गगन पर छा गयी हो?

लोक-धूमिल रँग दिया अनुराग से,
मौन जीवन भर दिया मधु राग से,
दे दिया संसार सोने का सहज
जो मिला करता बड़े ही भाग से,
कौन तुम मधुमास-सी अमराइयाँ महका गयी हो?

वीथियाँ सूने हृदय की घूम कर,
नव-किरन-सी डाल बाहें झूम कर,
स्वप्न छलना से प्रवंचित प्राण की
चेतना मेरी जगायी चूम कर,
कौन तुम नभ-अप्सरा-सी इस तरह बहका गयी हो?

रिक्त उन्मन उर-सरोवर भर दिया,
भावना संवेदना को स्वर दिया,
कामनाओं के चमकते नव शिखर
प्यार मेरा सत्य शिव सुन्दर किया,
कौन तुम अवदात री! इतनी अधिक जो भा गयी हो?

हे विधना!

हे विधना! मोरे आँगन का बिरवा सूखे ना।

यह पहली पहचान मिठास भरा,
रे झूमे लहराये रहे हरा,
हे विधना! मोरे साजन का हियरा दूखे ना।
हे विधना! मोरे आँगन का बिरवा सूखे ना।

लम्बी बीहड़ सुनसान डगरिया,
रे हँसते जाए बीत उमरिया,
हे विधना! मोरे मन-बसिया का मन रूखे ना।
हे विधना! मोरे आँगन का बिरवा सूखे ना।

कभी न जग की खोटी आँख लगे,
साँसत की अँधियारी दूर भगे,
हे विधना! मोरे जोबन पर बिरहा ऊखे ना।
हे विधना! मोरे आँगन का बिरवा सूखे ना।

मोह-माया

सोनचंपा-सी तुम्हारी याद साँसों में समायी है!

हो किधर तुम मल्लिका-सी रम्य तन्वंगी,
रे कहाँ अब झलमलाता रूप सतरंगी,
मधुमती-मद-सी तुम्हारी मोहनी रमनीय छायी है!

मानवी प्रति-कल्पना की कल्प-लतिका बन
कर गयीं जीवन जवा-कुसुमों भरा उपवन,
खो सभी, बस, मौन मन-मंदाकिनी हमने बहायी है!

हो किधर तुम, सत्य मेरी मोह-माया री
प्राण की आसावरी, सुख धूप-छाया री
राह जीवन की तुम्हारी चित्रसारी से सजायी है!

रात बीती

याद रह-रह आ रही है,
रात बीती जा रही है!

ज़िंदगी के आज इस सुनसान में
जागता हूँ मैं तुम्हारे ध्यान में
सृष्टि सारी सो गयी है,
भूमि लोरी गा रही है!

झूमते हैं चित्र नयनों में कई
गत तुम्हारी बात हर लगती नयी
आज तो गुज़रे दिनों की
बेरुख़ी भी भा रही है!

बह रहे हैं हम समय की धार में
प्राण! रखना पर भरोसा प्यार में
कल खिलेगी उर-लता जो
किस क़दर मुरझा रही है!

अगहन की रात

तुम नहीं, और अगहन की ठण्डी रात!

संध्या से ही सूना-सूना, मन बेहद भारी है,
मुरझाया-सा जीवन-शतदल, कैसी लाचारी है!
है जाने कितनी दूर सुनहरा प्रात!
तुम नहीं, और अगहन की ठंडी रात!

खोकर सपनों का धन, आँखें बेबस बोझिल निर्धन
देख रही हैं भावी का पथ, भर-भर आँसू के कन,
डोल रहा अन्तर पीपल का-सा पात!
तुम नहीं, और अगहन की ठंडी रात!

है दूर रोहिणी का आँचल, रोता मूक कलाधर
खोज रहा हर कोना, बिखरा जुन्हाई का सागर,
किसको रे आज बताएँ मन की बात!
तुम नहीं, और अगहन की ठंडी रात!

प्रतीक्षा

कितने दिन बीत गए
सपन न आये!

जागे सारी-सारी रात
डोला अंतर पीपर-पात
मन में घुमड़ी मन की बात
सजन न आये!

मेघ मचाते नभ में शोर
जंगल-जंगल नाचे मोर
हमको भूले री चितचोर
सदन न आये!

भर-भर आँचल कलियाँ फूल
दीप बहाये सरिता कूल
रह-रह तरसे पाने धूल
चरन न आये!

साध

कितने मीठे सपने तुमने दे डाले
पर, धरती पर प्यार सँजोया एक नहीं!

युग-युग से जग में खोज रहा एकाकी
पर, नहीं मिला रे मनचाहा मीत कहीं,
कोलाहल में मूक उमरिया बीत गयी
सुन पाया पल भर भी मधु-संगीत नहीं,
भर-भर डाले क्षीर-सिंधु मुसकानों के
संवेदन से हृदय भिगोया एक नहीं!
कितने मीठे सपने तुमने दे डाले
पर, धरती पर प्यार सँजोया एक नहीं!

एक तरफ़ तो बिखरा दीं सुषमा-पूरित
सौ-सौ मधुमासों की रंगीन बहारें,
और सहज दे डाले दोनों हाथों से
गहने रवि-शशि, तो गजरे फूल-सितारे,
पर, मेरे उर्वर जीवन-पथ पर तुमने
बीज मधुरिमा का बोया एक नहीं!
कितने मीठे सपने तुमने दे डाले
पर, धरती पर प्यार सँजोया एक नहीं!

अब नहीं...

अब नहीं मेरे गगन पर
चाँद निकलेगा!

बीत जाएगी तुम्हारी याद में सारी उमर
पार करनी है अँधेरी और एकाकी डगर,
किस तरह अवसन्न जीवन
बोझ सँभलेगा?

शांत, बेबस, मूक, निष्फल खो उमंगों को हृदय
चिर उदासी मग्न, निर्धन, खो तरंगों को हृदय
अब नहीं जीवन-जलधि में
ज्वार मचलेगा!

नेह रंजित, हर्ष पूरित, इंद्रधनुषी फाग को
उपवनों में गूँजते रस-सिक्त पंचम-राग को
क्या पता था, इस तरह
प्रारब्ध निगलेगा?

●

दीया जलाओ

यह गुज़रता जा रहा तूफ़ान
अब तो तुम
नये घर में नया दीया जलाओ!

मिट गया है
स्वप्न का वह नीड़
जिसमें चाँद-तारे जगमगाते थे,
बीन के वे तार सारे भग्न
जिनमें स्वर किसी दिन झनझनाते थे।
भूल जाऊँ –
इसलिए तुम अब
नये स्वर में नया मधु-गीत गाओ!

यह न पूछो
किस तरह मैं
ज़िंदगी की धार पर
उठता रहा, गिरता रहा,
भावनाएँ धूल पर सोती रहीं
या व्योम में उड़ती रहीं,
पर, जानता हूँ –
घूँट विष की ले चुका कितनी,
असर विष का नहीं जाता
मुझे मालूम है यह भी!
पर, ज़रा तुम
घट-सुधा का तो पिलाओ!

है अभी तो चाह बाक़ी,
और उर के द्वार पर देखो
मचलता ज्वार हँसने का

शुभे! बाक़ी,
अभी तो प्यार के अरमान बाक़ी,
फूल-से मधुमास में खोयी
अनेकों मुग्ध पागल चाँद की रातें अभी बाक़ी,
वफ़ा की, बेवफ़ाई की
हज़ारों व्यर्थ की बातें अभी बाक़ी!

तुम तनिक तो मुसकराती
साथ में मेरे चली आओ!

●

जिजिविषा

जी रहा है आदमी
प्यार ही की चाह में!

पास उसके गिर रही हैं बिजलियाँ,
घोर गहगह कर घहरतीं आँधियाँ,
पर, अजब विश्वास ले
सो रहा है आदमी
कल्पना की छाँह में!
जी रहा है आदमी
प्यार ही की चाह में!

पर्वतों की सामने ऊँचाइयाँ,
खाइयों की घूमती गहराइयाँ,
पर, अजब विश्वास ले
चल रहा है आदमी
साथ पाने राह में!
जी रहा है आदमी
प्यार ही की चाह में!

बज रही हैं मौत की शहनाइयाँ,
कूकती वीरान हैं अमराइयाँ,
पर, अजब विश्वास ले
हँस रहा है आदमी
आँसुओं में, आह में!
जी रहा है आदमी
प्यार ही की चाह में!

●

कौन हो तुम

कौन हो तुम, चिर-प्रतीक्षा-रत
सजग, आधी अँधेरी रात में?

उड़ रहे हैं घन तिमिर के
सृष्टि के इस छोर से उस छोर तक,
मूक इस वातावरण को
देखते नभ के सितारे एकटक,
कौन हो तुम, जागतीं जो इन
सितारों के घने संघात में?

जल रहा यह दीप किसका,
ज्योति अभिनव ले कुटी के द्वार पर,
पंथ पर आलोक अपना
दूर तक बिखरा रहा विस्तार भर,
कौन है यह दीप? जलता जो
अकेला, तीव्र गतिमय वात में?

कर रहा है आज कोई
बार-बार प्रहार मन की बीन पर,
स्नेह काले लोचनों से
युग-कपोलों पर रहा रह-रह बिखर,
कौन-सी ऐसी व्यथा है,
रात में जगते हुए जलजात में?

चाँद से

कपोलों को तुम्हारे चूम लूंगा,
मुसकराओ ना!

तुम्हारे पास माना रूप का आगार है,
सुनयनों में बसा सुख-स्वप्न का संसार है,
अनावृत अप्सराएँ नृत्य करती हैं जहाँ,
नवेली तारिकाएँ ज्योति भरती हैं जहाँ,

उन्हीं के सामने जाओ, यहाँ पर,
झलमलाओ ना!

बड़ी खामोश आहट है तुम्हारे पैर की
तभी तो चोर बनकर आसमाँ की सैर की,
खुली ज्यों ही पड़ी चादर सुनहली धूप की
न छिप पायी किरन कोई तुम्हारे रूप की,

बहाना अंग ढकने का लचर इतना
बनाओ ना!

युगों से देखता हूँ तुम बड़े ही मौन हो
बताओ तो ज़रा, मैं पूछता हूँ कौन हो?
न पाओगे कभी जा दृष्टि से यों भाग कर
तुम्हारा धन गया है आज आँगन में बिखर,

रुको पथ बीच, चुपके से मुझे उर में
बसाओ ना!

चाँद सोता है!

सितारों से सजी चादर बिछाए चाँद सोता है!

बड़ा निश्चिंत है तन से,
बड़ा निश्चिंत है मन से,
बड़ा निश्चिंत जीवन से,

किसी के प्यार का आँचल दबाए चाँद सोता है!
सितारों से सजी चादर बिछाए चाँद सोता है!

नयी सब भावनाएँ हैं,
नयी सब कल्पनाएँ हैं,
नयी सब वासनाएँ हैं,

हृदय में स्वप्न की दुनिया बसाए चाँद सोता है!
सितारों से सजी चाँद बिछाए चाँद सोता है!

सुखद हर साँस है जिसकी,
मधुर हर आस है जिसकी,
सनातन प्यास है जिसकी,

विभा को वक्ष पर अपने लिटाए चाँद सोता है!
सितारों से सजी चादर? बिछाए चाँद सोता है!

विश्वास

यह विश्वास मुझे है –
एक दिवस तुम
मेरी प्यासी आँखों के सम्मुख
मधु-घट लेकर आओगी,
बदली बनकर छाओगी!
दरवाज़े को
गोरे-गोरे दर्पन-से हाथों से
खोल खड़ी हो जाओगी।
भोले लाल कपोलों पर
लज्जा के रँग भर-भर लाओगी।
नयनों की अनबोली भाषा में
जाने क्या-क्या कह जाओगी!

ज्यों चंदा को देख
चकोर विहँसने लगता है,
ज्यों ऊषा के आने पर
कमलों का दल खिलने लगता है,
वैसे ही देख तुम्हें कोई
चंचल हो जाएगा।
बीते मीठे सपनों की
दुनिया में खो जाएगा।

फिर इंगित से पास बुलाएगा,
धीरे से पूछेगा–
'कैसी हो, कब आयीं?'
तुम क्या उत्तर दोगी?
शायद, दो लम्बी आहें भर लोगी,
आँखों पर आँचल धर लोगी!

कोई शिकायत नहीं

तुमसे मुझे आज कोई शिकायत नहीं है!

विवश बन, नयन भेद सारा छिपाये हुए हैं,
मिलन-चित्र मोहक हृदय में समाये हुए हैं,
  बहुत सोचता हूँ, बहुत सोचता हूँ,
  कहीं दूर का पथ नया खोजता हूँ,
पर, भूलने की शुभे! एक आदत नहीं है!
तुमसे मुझे आज कोई शिकायत नहीं है!

कभी देख लेता मधुर स्वप्न जाने-अजाने,
उसी के नशे में तुम्हें पास लगता बुलाने,
  बुरा क्या अगर मुसकराता रहूँ मैं,
  नयी एक दुनिया बसाता रहूँ मैं?
सच, यह किसी भी तरह की शरारत नहीं है!
तुमसे मुझे आज कोई शिकायत नहीं है

अकेली लता को कभी वृक्ष लेता लगा उर,
कमलिनी थकी-सी भ्रमर को सुखद अंक में भर,
  सिमटती गयी, चुप लजाती रही जब,
  बड़ी याद मुझको सताती रही तब,
सौन्दर्य जग का किसी की अमानत नहीं है!
तुमसे मुझे आज कोई शिकायत नहीं है!

विरह का गान

मिल गया तुमको, तुम्हारा प्यार!

ज़िंदगी मेरी अमा की रात है,
एक पश्चाताप की ही बात है,
आज मेरा घर हुआ वीरान है,
मूक होठों पर विरह का गान है,
  पर, खुशी है–
  मिल गया तुमको मधुर संसार!

भाग्य में मेरे बदा था शून्य-जल
मधु-सुधा भी बन गया तीखा गरल,
पास की पहचान अब कड़ियाँ बनीं,
वेदनामय गत मिलन-घड़ियाँ बनीं,
  पर, खुशी है–
  मिल गया तुमको नया शृंगार!

ज़िंदगी में आँधियाँ ही आँधियाँ,
स्नेह बिन कब तक जलेगा यह दिया?
आ रहा बढ़ता भयावह ज्वार है,
हाथ में आकर छिना पतवार है,
  पर, खुशी है–
  मिल गया तुमको सबल आधार!

दीप जला दो।

मेरे सूने घर में –
युग-युग का अँधियारा छाया है
जीवन-ज्योति जली थी–सपना है;
तुममें जितना स्नेह समाया है
तब समझूंगा–मेरा अपना है
यदि ऊने अन्तर में तुम दीप जला दो।

कल्पों से यह जीवन क्या? मरुथल
बना हुआ है जग का ऊष्मा-घर,
एकाकी पथ, फिर उस पर मृग-जल
तब मानूंगा तुममें रस-सागर
यदि मेरे ऊसर-मन को नहला दो।

पल-पल पर आना-जाना रहता
केवल रेतीले तूफ़ानों का,
बनता क्या? जो है वह भी ढहता;
समझूंगा मूल्य तुम्हारे गानों का
यदि सूखे सर-से मन को बहला दो।

सम्भव हो न सकेगा जीवित रहना
पल भर भी तन-मन मोम-लता का
है बस मूक प्रहारों को सहना;
समझूंगा जादू कोमलता का
यदि पाहन-उर के व्रण सहला दो।

●

धन्यवाद

दो क्षण सम्पुट अधरों को जो
तुमने दी खिलते शतदल-सी मुसकान;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद।

जग की डाल-डाल पर छाया
था मधु-ऋतु का वैभव,
वसुधा के कन-कन ने खेली
थी जब होली अभिनव,
मेरे उर के मूक गगन को
गुंजित कर जो तुमने गाया मधु-गान;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद।
दो क्षण सम्पुट अधरों को जो
तुमने दी खिलते शतदल-सी मुसकान;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद।

पूनम की शीतल किरनों में
वन-प्रांतर डूब गए,
जब जन-जन मन में सपनों के
जलते थे दीप नये,
युग-युग के अंधकार में तुम
मेरे लाये जो जगमग स्वर्ण-विहान;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद।
दो क्षण सम्पुट अधरों को जो
तुमने दी खिलते शतदल-सी मुसकान;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद।

जब प्रणयोन्माद लिए बजती
मुरली मनुहारों की,

घर-घर से प्रतिध्वनियाँ आतीं
गीतों-झनकारों की,
दो क्षण को ही जो तुमने आ
बसा दिया मेरा अंतर-घर वीरान;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद।
दो क्षण सम्पुट अधरों को जो
तुमने दी खिलते शतदल-सी मुसकान;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद।

आ जाती जीवन-प्यार लिए
जब संध्या की बेला,
हर चौराहे पर लग जाता
अभिसारों का मेला,
दुनिया के लांछन से सोया
जगा दिया खंडित फिर मेरा अभिमान;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद।
दो क्षण सम्पुट अधरों को जो
तुमने दी खिलते शतदल-सी मुसकान;
कृपा तुम्हारी, धन्यवाद।

मिल गए थे हम

ज़िंदगी की राह पर जब दो-क्षणों को
मिल गए थे हम,
एकरसता मौनता का बोझ भारी
हो गया था कम।

उड़ गया छाया थकावट का, उदासी
का धुआँ गहरा,
पा तुम्हें मन-प्राण मरुथल पर उठी थी
रस-लहर लहरा।

पर, बनी मंज़िल मनुज की क्या कभी भी–
राह जीवन की?
क्या सदा को छा सकीं नभ में घटाएँ
सुखद सावन की?

आज जाना है विरल बहुमूल्य कितनी
प्यार की घड़ियाँ,
गूँजती हैं आज भी रह-रह तुम्हारे
गीत की कड़ियाँ।

ग्रहण

आज मेरे सरल चाँद को किस
ग्रहण ने ग्रसा है?
आज कैसी विपद में विहंगम
गगन का फँसा है?

मौन वातावरण में बिखरतीं
उदासीन किरणें,
रंग बदला कि मानों उठी हो
घटा घोर घिरने।

दूर का यह अँधेरा सघन अब
निकट आ रहा है,
गीत दुख का, बड़ी वेदना का
पवन गा रहा है!

अश्रु से भर खड़े मूक बनकर
सभी तो सितारे,
हो व्यथित यह सतत सोचते हैं
कि किसको पुकारें?

साथ हूँ मैं सुधाधर तुम्हारे
मुझे दुख बताओ,
हूँ तुम्हारा, रहूँगा तुम्हारा
न कुछ भी छिपाओ।

विवशता

दूर गगन से देख रहा शशि।

जगते-जगते बीत गयी है
आधी रात,
पर, पूरी हो न सकी अस्फुट
मन की बात,
भरे नयन से देख रहा शशि।
दूर गगन से देख रहा शशि।

ऊपर से तो शांत दिखायी
देते प्राण,
पर, भीतर क़ैद बड़ा यौवन
का तूफ़ान,
विरह-जलन से देख रहा शशि।
दूर गगन से देख रहा शशि।

सारे नभ में बिखरी पड़ती
है मुसकान,
पर, कितना लाचार अधूरा
है अरमान,
बोझिल तन से देख रहा शशि।
दूर गगन से देख रहा शशि।

मृग–तृष्णा

चाँद से जो प्यार करता है–
वह अकेला ज़िंदगी भर आह भरता है!

ऐसा नहीं होता अगर,
तो क्यों कहा जाता कलंकित रे?
मधुकर सरीखा उर, तभी
तो कर न सकता स्नेह सीमित रे!

चाँद से जो प्यार करता है–
नष्ट वह अपना मधुर संसार करता है!
वह अकेला ज़िंदगी भर आह भरता है!

ऐसा नहीं होता अगर,
तो दूर क्यों इंसान से रहता?
नीरस हृदय है; इसलिए
ना बात मीठी भूलकर कहता,

चाँद से जो प्यार करता है–
कंटकों को जानकर गलहार करता है!
वह अकेला ज़िंदगी भर आह भरता है!

चाँद और पत्थर (1)

चाँद! तुम पत्थर-हृदय हो।

व्यर्थ तुमसे प्यार करना,
व्यर्थ है मनुहार करना,
व्यर्थ जीवन की सुकोमल भावनाओं को जगाना,
जब न तुम किंचित सदय हो।
चाँद तुम पत्थर हृदय हो।

व्यर्थ तुमसे बात करना,
और काली रात करना,
प्राणघाती, छल भरा, झूठा तुम्हारा स्नेह बंधन;
चाहते अपनी विजय हो।
चाँद! तुम पत्थर हृदय हो।

फेंक कर सित डोर गुमसुम,
देखते इस ओर क्या तुम?
स्वर्ग के सम्राट, नभ-स्वच्छन्द-वासी! रे तुम्हें क्या?
सृष्टि हो चाहे प्रलय हो।
चाँद! तुम पत्थर हृदय हो।

सत्य आकर्षण नहीं है,
सत्य मधु-वर्षण नहीं है,
सत्य शीतल रुपहली मुसकान अधरों की नहीं है;
तुम स्वयं में आज लय हो।
चाँद! तुम पत्थर हृदय हो।

चाँद और पत्थर (2)

चाँद! तुम पत्थर नहीं हो।

है तुम्हारा भी हृदय कोमल,
स्नेह उमड़ा जा रहा छल-छल,
हो बड़े भावुक, बड़े चंचल,
इसलिए, मेरे निकट हो,
प्राण से बाहर नहीं हो।
चाँद! तुम पत्थर नहीं हो।

राह अपनी चल रहे हो तुम,
आँधियों में पल रहे हो तुम,
शीत में हँस गल रहे हो तुम
इसलिए कहना ग़लत है–
'तुम मनुज-सहचर नहीं हो।'
चाँद! तुम पत्थर नहीं हो।

हो किसी के प्यार बन्धन में,
हो किसी की आश जीवन में,
गीत के स्वर हो किसी मन में,
सोच इतना ही मुझे है–
हाय, धरती पर नहीं हो!
चाँद! तुम पत्थर नहीं हो।

न जाने क्यों...

मुझे मालूम है यह चाँद मुझको मिल नहीं सकता,
कभी भी भूलकर स्वर्गिक-महल से हिल नहीं सकता,
चरण इसके सदा आकाशगामी हैं,
रुपहले-लोक का यह मात्र हामी है,
न जाने क्यों उसे फिर भी हृदय से प्यार करता हूँ!
न जाने क्यों उसी की याद बारंबार करता हूँ!

मुझे मालूम है यह चाँद बाहों में न आएगा,
कभी भी भूलकर मुझको न प्राणों में समाएगा,
अमर है कल्पना का लोक रे इसका,
नहीं पाना किसी के हाथ के बस का,
न जाने क्यों उसी पर व्यर्थ का अधिकार करता हूँ!
न जाने क्यों उसे फिर भी हृदय से प्यार करता हूँ!

मुझे मालूम है यह चाँद कैसे भी न बोलेगा,
कभी भी भूलकर अपने न मन की गाँठ खोलेगा,
सरल इसके सुनयनों की न भाषा है,
समझने में निराशा ही निराशा है,
न जाने क्यों उसी से भावना-व्यापार करता हूँ!
न जाने क्यों उसे फिर भी हृदय से प्यार करता हूँ!

मुझे मालूम है यह चाँद वैभव का पुजारी है,
बड़ी मनहर गुलाबी स्वप्न दुनिया का विहारी है,
वे मेरे पंथ पर काँटे बिछे अगणित,
अभावों की हवाएँ आ गरजती नित,
न जाने क्यों उसी से राह काशृंगार करता हूँ!
न जाने क्यों उसे फिर भी हृदय से प्यार करता हूँ!

साथ

कभी क्या चाँद का भी साथ छूटा है?

रहेंगे हम जहाँ जाकर
वहाँ यह चाँद भी होगा,
हमारे प्राण का जीवित
वहाँ उन्माद भी होगा,
बताओ तो किसी ने आज तक क्या
चाँदनी का रूप लूटा है?

हमारे साथ यह सुख के
दिनों में मुसकराएगा,
दुखी यह देखकर हमको
पिघल आँसू बहाएगा,
बिछुड़कर दूर रहने से कभी भी
प्यार का बंधन न टूटा है।

हमारी नींद में आ यह
मधुर सपने सजाएगा,
थके तन पर बड़े शीतल
पवन से थपथपाएगा,
निरंतर एक गति से ही बहेगा
स्नेह का जब स्रोत फूटा है।

●

चाँद, मेरे प्यार!

ओ चाँद।
तुमको देखकर
बरबस न जाने क्यों
किसी मासूम मुखड़े की
बड़ी ही याद आती है!

फिर यह बात मन में बैठ जाती है
कि शायद तुम वही हो
चाँद, मेरे प्यार!

यह वही मुख है
जिसे मैंने हज़ारों बार चूमा है
कभी हलके,
कभी मदहोश 'आदम' की तरह।

यह वही मुख है
हज़ारों बार मेरे सामने जो मुसकराया है,
कभी बेहद लजाया है।

हुआ क्या आज यदि
मेरी पहुँच से दूर हो,
मुख पर तुम्हारे अजनबी छाया
चिढ़ाने का नवीन सरूर हो –

जैसे कि फिर तो पास आना ही नहीं!

क्या कह रहे हो?
ज़ोर से बोलो –

'कि पहचाना नहीं!'

हुश!
प्यार के नखरे
न ये अच्छे तुम्हारे!

अब पकड़ना ही पड़ेगा
पहुँच किरणों की सहारे!

देखता हूँ और कितनी दूर भागोगे,
मुझे मालूम है जी,
तुम बिना इसके न मानोगे।

दुराव

चाँद को छिप-छिप झरोखों से सदा देखा किया
और अपनी इस तरह आँखें चुरायीं चाँद से!

चाँद को झूठे सँदेसे लिख सदा भेजा किया
और दिल की इस तरह बातें छिपायीं चाँद से!

चाँद को देखा तभी मैं मुसकराया जानकर
और उर का यों दबाया दर्द अपना चाँद से!

लाख कोशिश की मगर मैं चाँद को समझा नहीं
और पल भर कह न पाया स्वर्ण-सपना चाँद से।

भूल करता ही गया अच्छा-बुरा सोचा नहीं
प्यार कर बैठा किसी के, चिर-धरोहर, चाँद से!

युग गुज़रते जा रहे खामोश, मैं भी मौन हूँ;
क्योंकि अब बातें करूँ किस आसरे पर चाँद से?

यह न समझो

यह न समझो कूल मुझको मिल गया
आज भी जीवन-सरित मझधार में हूँ!

प्यार मुझको धार से
धार के हर वार से,
प्यार है बजते हुए
हर लहर के तार से,
यह न समझो घर सुरक्षित मिल गया
आज भी उघरे हुए संसार में हूँ!

प्यार भूले गान से,
प्यार हत अरमान से,
ज़िंदगी में हर क़दम
हर नये तूफ़ान से,
यह न समझो इंद्र-उपवन मिल गया
आज भी वीरान में, पतझार में हूँ!

खोजता हूँ नव-किरन
रुपहला जगमग गगन,
चाहता हूँ देखना
एक प्यारा-सा सपन,
यह न समझो चाँद मुझको मिल गया
आज भी चारों तरफ़ अँधियार में हूँ!

तुम्हारी माँग का कुंकुम!

उड़ रहा है आज यह कैसे
तुम्हारी माँग का कुंकुम!

बहुत ही पास से मैंने तुम्हें देखा
न थी मुख पर कहीं उल्लास की रेखा,
न जाने क्यों रहीं केवल खड़ीं तुम पद-जड़ित गुमसुम!

मिला है जब तुम्हें यह गीतमय जीवन
बताओ क्यों हुआ विक्षुब्ध फिर तन-मन?
न जाने किस भविष्यत् के विचारों से व्यथित हो तुम।

बुझा-सा हो रहा मुख-चंद्र चमकीला,
कि है प्रतिश्वास भारी, रंग-तन पीला,
न जाने आज क्यों हर वाटिका में जीर्ण-शीर्ण कुसुम!

प्रेय

प्यार की जिसको मिली सौगात है
ज़िंदगी उसकी सजी बारात है!
भाग्यशाली वह; उसी के ही लिए
सृष्टि में मधुमास है, बरसात है!

●

प्रकृति-प्रेम की कविताएँ

आसक्ति

भोर होते –
द्वार वातायन झरोखों से
उचकतीं-झाँकतीं उड़तीं
मधुर चहकार करतीं
सीधी सरल चिड़ियाँ
जगाती हैं, उठाती हैं मुझे!
रात होते –
निकट के पोखरों से आ-आ
कभी झींगुर; कभी दर्दुर
गा-गा सुलाते हैं,
नव-नव स्वप्न-लोकों में घुमाते हैं मुझे!

दिन भर –
रँग-बिरंगे दृश्य-चित्रों से
मोह रखता है अनंग-अनंत नीलाकाश!
रात भर –
नभ-पर्यंक पर
रुपहले-स्वर्णिम सितारों की छपी
चादर बिछाए
सोती ज्योत्स्ना
कितना लुभाती है!
अंक में सोने बुलाती है!

ऐसे प्यार से मुँह मोड़ लूँ कैसे?
धरा – इतनी मनोहर
छोड़ दूँ कैसे?

अभिलषित

दिन भर –
धरती पर लेटी पसरी
रेशम जैसी
चिकनी-चिकनी दूब से,
आँगन में उतरी
खुली-खुली
फैली बिखरी
हेमा-हेमा धूप से,
यह अलबेला
एकाकी
जम कर खेला।
दिन भर खेला।

दिन भर –
ताज़े टटके गदराए
फूलों की छाँह में,
हरिआए-हरिआए
शूलों की बाँह में,
उनकी मादक-मादक गंधों में
अटका-भटका;
ऊला-भूला।

शर्मीली-शर्मीली भोली
कलियों की,
लम्बी-लम्बी पतली-पतली
फलियों की,
डालों-डालों झूला।
लिपट-लिपट कर

टहनी-टहनी पत्ती-पत्ती झूला।
दिन भर झूला।

दिन भर–
सुन्दर रंगों छापों वाली साड़ी पहने
उड़ती मुग्धा तितली पर,
वासन्ती रंग-रँगी
मदमाती प्रेम-प्रगल्भा
प्रौढ़ा सरसों पर,
जी भर राँचा,
संग-संग खेतों-खेतों नाचा!
दिन भर नाचा!

दिन भर –
इमली के / अमरूदों के पेड़ों पर
चोरी-चोरी डोला,
झरबेरी के कानों में
जा-जा,
चुपके-चुपके
जाने क्या-क्या बोला।
दिन भर डोला।

पातालपानी की उपत्यका से

तुम्हारे अंक में
विश्रांति पाने आ गया
भटका प्रवासी मैं।

अनावृत वक्ष-ढालों पर सहज उतरूँ
सबल चटान रूपी बाँह दो,
शीतल अतल-की छाँह दो।
तप्त अधरों को
सरस जलधार का सुख-स्पर्श दो,
युग मूक मन को हर्ष दो,
अतृप्त आत्मा को
सुखद अनुराग-संगम बोध दो।
एकांत में कल-कल मधुर संगीत से
दो स्वप्न का अधिवास बहुरंगी।
ओ गहन घाटी!
आ गया हूँ मैं
तुम्हारा प्राण, चिर-संगी।

कुछ क्षणों को बाँध लूँ
अल्हड़ तुम्हारी धार से
बेबस उमड़ती भावना का ज्वार।
फिर इस जन्म में
इस ओर आना हो, न हो।
क्या मुझ प्रवासी का
नहीं इतना तनिक अधिकार
छोड़ जाऊँ जो
प्यार सूचक चिन्ह ही दो .. चार ....?

गौरैया

गौरैया बड़ी ढीठ है,
सब अपनी मर्ज़ी का करती है,
सुनती नहीं ज़रा भी मेरी,
बार-बार कमरे में आ
चहकती है – फुदकती है,
इधर से भगाऊँ तो इधर जा बैठती है,
बाहर निकलने का नाम ही नहीं लेती।
जब चाहती है
आकाश में फुर्र से उड़ जाती है,
जब चाहती है
कमरे में फुर्र से घुस आती है।
खिड़कियाँ-दरवाज़ें बंद कर दूँ?
रोशनदानों पर गत्ते ठोंक दूँ?
पर, खिड़कियाँ-दरवाज़े भी
कब-तक बंद रखूँ?
इन रोशनदानों से
कब-तक हवा न आने दूँ?
गौरैया नहीं मानती।

वह इस बार फिर
मेरे कमरे में घोंसला बनाएगी,
नन्हें-नन्हें खिलौनों को जन्म देगी,
उन्हें जिलाएगी.... खिलाएगी।

मैंने बहुत कहा गौरैया से–
मैं आदमी हूँ मुझसे डरो
और मेरे कमरे से भाग जाओ।
पर, अद्‌भुत है उसका विश्वास

वह मुझसे नहीं डरती,
एक-एक तिनका लाकर
ढेर लगा दिया है
रोशनदान के एक कोने में।

ढेर नहीं,
एक-एक तिनके से
उसने रचना की है प्रसूति-गृह की।
सचमुच, गौरैया!
कितनी कुशल वास्तुकार हो तुम,
अनुभवी अभियन्ता हो।
यह घोंसला
तुम्हारी महान कला-कृति है,
पंजों और चोंच के
सहयोग से विनिर्मित,
तुम्हारी साधना का प्रतिफल है।
कितना धैर्य है
गौरैया, तुममें।

इस घोंसले में
लगता है–
ज़िंदगी की
तमाम ख़ुशियाँ और बहारें
सिमट आने को आतुर हैं।

लेकिन; यह–
सजावट-सफ़ाई पसन्द आदमी
सभ्य और सुसंस्कृत आदमी
कैसे सहन करेगा, गौरैया
तुम्हारा दिन-दिन उठता-बढ़ता नीड़?
वह एक दिन

फेंक देगा इसे कूड़ेदान में।

गौरैया!
यह आदमी है
कला का बड़ा प्रेमी है, पारखी है।
इसके कमरे की दीवारों पर
तुम्हारे चित्र टँगे हैं।
चित्र –
जिनमें तुम हो,
तुम्हारा नीड़ है,
तुम्हारे खिलौने हैं।

गौरैया, भाग जाओ,
इस कमरे से भाग जाओ।
अन्यथा; यह आदमी
उजाड़ देगा तुम्हारी कोख।
एक पल में ख़त्म कर देगा
तुम्हारे सपनों का संसार।

और तुम यह सब देखकर
रो भी नहीं पाओगी।
सिर्फ़ चहकोगी,
बाहर-भीतर भागोगी,
बेतहाशा
बावली-सी
भूखी-प्यासी।

आह्लाद

बदली छायी, बदली छायी!

दिशा-दिशा में
बिजली कौंधी,
मिट्टी महकी
सोंधी-सोंधी!

युग-युग
विरह-विरस में डूबी,
एकाकी घबरायी ऊबी,
अपने प्रिय जलधर से
मिल कर,
हाँ, हुई सुहागिन धन्य धरा,
मेघों के रव से शून्य भरा!

वर्षा आयी, वर्षा आयी!

उमड़ी
शुभ घनघोर घटा,
छायी श्यामल दीप्त छटा!

दुलहिन झूमी,
घर-घर घूमी
मनहर स्वर में
कजली गायी!
बदली छायी, वर्षा आयी!

उमंग

सान्ध्य काल
धूप-छाँह बीच,
गिर रही फुहार
रिमझिमा रहा
गगन।

बार-बार
द्वार थपथपा रहा
समय / अ-समय
किस क़दर
उतावला पवन।

दूर-पास
खेत हाट चौक में
अधीर
जान-बूझ
भीग-भीग
थरथरा रहा
प्रिया बदन।

बरखा की रात

दिशाएँ खो गयीं तम में
धरा का व्योम से चुपचाप आलिंगन!

धरा ऐसी कि जिसने नव-
सितारों से जड़ित साड़ी उतारी है,
सिहर कर गौर-वर्णी स्वस्थ
बाहें गोद में आने पसारी हैं,

समायी जा रही बनकर
सुहागिन, मुग्ध मन है और बेसुध तन!

कि लहरों के उठे शीतल
उरोजों पर अजाना मन मचलता है,
चतुर्दिक घुल रहा उन्माद
छवि पर छा रही निश्छल सरलता है,

खिँचे जाते हृदय के तार
अगणित स्वर्ग-सम अविराम आकर्षण!

बुझाने छटपटाती प्यास
युग-युग की, हुआ अनमोल यह संगम,
जलद नभ से विरह-ज्वाला
बुझाने को सघन होकर झरे झमझम,

निरन्तर बह रहा है स्रोत
जीवन का, उमड़ता आज है यौवन!

मेघ-गीत

उमड़ते-गरजते चले आ रहे घन
घिरा व्योम सारा कि बहता प्रभंजन
अँधेरी उभरती अवनि पर निशा-सी
घटाएँ सुहानी उड़ीं दे निमंत्रण।

कि बरसो जलद रे जलन पर निरंतर
तपी और झुलसी विजन-भूमि दिन भर,
करो शान्त प्रत्येक कण आज शीतल
हरी हो, भरी हो प्रकृति नव्य सुंदर!

झड़ी पर, झड़ी पर, झड़ी पर, झड़ी हो,
जगत मंच पर सौम्य शोभा खड़ी हो,
गगन से झरो मेघ ओ! आज रिमझिम,
बरस लो सतत, मोतियों-सी लड़ी हो!

हवा के झकोरे उड़ा गंध-पानी
मिटा दी सभी उष्णता की निशानी,
नहाती दिवारें नयी औ' पुरानी
डगर में कहीं स्रोत चंचल रवानी!

कृषक ने पसीने बहाये नहीं थे,
नवल बीज भू पर उगाये नहीं थे,
सृजन-पंथ पर हल न आये अभी थे
खिले औ' पके फल न खाये कहीं थे!

दृगों को उठाकर, गगन में अड़ा कर
प्रतीक्षा तुम्हारी सतत लौ लगा कर—
हृदय से, श्रवण से, नयन से व तन से,

घिरो घन, उड़ो घन घुमड़कर जगत पर!

अजब हो छटा बिजलियाँ चमचमाएँ,
अँधेरा सघन, लुप्त हो सब दिशाएँ
भरन पर, भरन पर सुना राग नूतन
नया प्रेम का मुक्त-संदेश छाये!

विजन शुष्क आँचल हरा हो, हरा हो,
जवानी भरी हो सुहागिन धरा हो,
चपलता बिछलती, सरलता शरमती,
नयन स्नेहमय ज्योति, जीवन भरा हो!

शिशिर की रात

स्तब्ध, गीली, शुभ्र धुँधली रात है,
बह रहा शीतल शिशिर का वात है।
छा रहा कुहरा धुआँ-सा दूर तक,
छिप गया है चन्द्रमा का नूर तक।

हो गयी फीकी नशीली ज्योत्स्ना,
व्योम मानों शीत का बंदी बना।
घोंसलों से मूक चिड़ियाँ झाँकतीं,
नींद में डूबी हुईं कुछ आँकतीं।

शांत धरती पर खड़ी ज्यों भित्तियाँ
जम गयी प्रत्येक तरु की पत्तियाँ!
आज चंचल धूल भी चुपचाप है,
उच्च टूटे शृंग पर हिमताप है।

बर्फ़ का तूफ़ान आएगा अभी,
श्वेत चादर-सी बिछाएगा अभी,
बन्द कर लो ये झरोखे द्वार सब,
आज तो उमड़े हृदय का प्यार सब!

रात लम्बी है सबेरा दूर है,
क्या करें, यह मन बड़ा मजबूर है!
इस तरह अब और शरमाओ नहीं,
पास आओ, दूर यों जाओ नहीं।

रूठने का आज यह अवसर नहीं
ज़िंदगी इस रात से बेहतर नहीं!

शीतार्द्र

उतरी धीमे-धीमे फिर-फिर ओस रात-भर।

हिम-शीतल सन्नाटा
छाया सुप्त धरा पर,
फूलों - पत्तों नाची
प्रीति पुतरिका बनकर,
कारीगर कुहरे ने किया सृजन कनात-घर।

यहाँ-वहाँ जगह-जगह
बिखरे जल-कण हीरे,
घात लगाये फिरते
पवन झकोरे धीरे,
पहरेदार सरीखा जागा, हर प्रपात, झर।

ख़ूब जमी है महफ़िल
अध्यक्ष बनी रजनी,
प्रिय को कस कर बाँधे
जागी-सोयी सजनी,
किसी दिशा में दबका बैठा, नव-प्रभात, डर।

हेमन्त

भीगी-भीगी भारी रात,
नींद न आती सारी रात!

घोर अँधेरा चारों ओर
दूर अभी तो लोहित भोर
थमा हुआ है सारा शोर
ऐसे मौसम में चुप क्यों हो,
कहो न कोई मन की बात!

कुहरा बरस रहा चुपचाप
अतिशय उतरा नभ का ताप
व्योम-धरा का मौन मिलाप
ऐसे लमहों में पास रहो,
थर-थर काँपेगा हिम गात!

नीरवता का मात्र प्रसार
तरुदल हिलते खेतों पार
जब-तब बज उठते हैं द्वार
खोल गवाक्ष न झाँको बाहर,
मादक पवन लगाये घात!

हेमन्ती धूप

कितनी सुखद है
धूप हेमन्ती!

सुबह से शाम तक
इसमें नहाकर भी
हमारा जी नहीं भरता,
विलग हो
दूर जाने को
तनिक भी मन नहीं करता,
अरे, कितनी मधुर है
धूप हेमन्ती!

प्रिया-सम
गोद में इसकी
चलो, सो जायँ,
दिन भर के लिए खो जायँ।

कितनी काम्य
कितनी मोहिनी है
धूप हेमन्ती!
कितनी सुखद है
धूप हेमन्ती!

री हवा!

री हवा!
गीत गाती आ,
सनसनाती आ;
डालियाँ झकझोरती
रज को उड़ाती आ।

मोहक गंध से भर
प्राण पुरवैया
दूर उस पर्वत-शिखा से
कूदती आ जा।
ओ हवा!
उन्मादिनी यौवन भरी
नूतन हरी इन पत्तियों को
चूमती आ जा।

गुनगुनाती आ,
मेघ के टुकड़े लुटाती आ।

मत्त बेसुध मन,
मत्त बेसुध तन।

खिलखिलाती, रसमयी,
जीवनमयी
उर-तार झंकृत
नृत्य करती आ!
री हवा!

अनुभूत : अस्पर्शित

ओ, लहकती बहकती बसन्ती हवाओ!
छुओ मत मुझे
इस तरह मत छुओ।
अनुराग भर-भर, गुँजा फागुनी स्वर
न ठहरो, न गुज़रो इधर से
बसन्ती हवाओ!

भटकती बहकती बसन्ती हवाओ!
मुझे ना डुबाओ
उफ़नते उमड़ते
भरे पूर रस के कुओं में, सरों में,
मधुर रास-रज के कुओं में, सरों में!
छुओ मत मुझे
इस तरह मत छुओ।
ओ, बसन्ती हवाओ!
दहकती चहकती बसन्ती हवाओ!

अभिशप्त यह क्षेत्र वर्जित सदा से,
न आओ इधर,
यह विवश।
एक सुनसान वीरान मन को
समर्पित सदा से,
न आओ इधर ओ, बसन्ती हवाओ!
गमकती खनकती बसन्ती हवाओ!
छुओ मत मुझे
इस तरह मत छुओ।

तप्त प्यासे कुओं में, सरों में

नहीं यों भिगोओ मुझे।
इन अवश अंग युग-युग पिपासित,
कुओं में, सरों में
नहीं यों भिगोओ मुझे।

ओ, बसन्ती हवाओ!
मचलती छलकती बसन्ती हवाओ!
छुओ मत मुझे
इस तरह मत छुओ।
यह अननुभूत ओझल अस्पर्शित
सदा से।
न आओ इधर
यह उपेक्षित अदेखा अचीन्हा
सदा से।

बसंत

अंग-अंग में उमंग आज तो पिया,
बसंत आ गया!

दूर खेत मुसकरा रहे हरे-हरे,
डोलती बयार नव-सुगंध को धरे,
गा रहे विहग नवीन भावना भरे,
प्राण! आज तो विशुद्ध भाव प्यार का
हृदय समा गया!
अंग-अंग में उमंग आज तो पिया,
बसंत आ गया!

खिल गया अनेक फूल-पात से चमन,
झूम-झूम मौन गीत गा रहा गगन,
यह लजा रही उषा कि पर्व है मिलन,
आ गया समय बहार का, विहार का
नया नया नया!
अंग-अंग में उमंग आज तो पिया,
बसंत आ गया!

मंत्र-मुग्ध

गहन पहेली,
ओ लता-चमेली!
अपने फूलों में / अंगों में
इतनी मोहक सुगन्ध
अरे, कहाँ से भर लायीं!

ओ श्वेता! ओ शुभ्रा!
कोमल सुकुमार सहेली!
इतना आकर्षक मनहर सौन्दर्य
कहाँ से हर लायीं!
धर लायीं!
सुवास यह
बाहर की, अन्तर की
तन की, आत्मा की
जब-जब करता हूँ अनुभूत –
भूल जाता हूँ
सांसारिकता,
अपना अता-पता!
कुछ क्षण को इस दुनिया में
खो जाता हूँ,
तुमको एकनिष्ठ
अर्पित हो जाता हूँ!

ओ सुवासिका!
ओ अलबेली!
ओ री, लता - चमेली!

कचनार

पहली बार मेरे द्वार
रह-रह, गह-गह
कुछ ऐसा फूला कचनार
गदराई हर डार।

इतना लहका, इतना दहका
अन्तर की गहराई तक
पैठ गया कचनार।

जामुन रंग नहाया
मेरे गैरिक मन पर छाया
छज्जों और मुँडेरों पर
जम कर बैठ गया कचनार।

पहली बार
मेरे द्वार
कुछ ऐसा झूमा कचनार
रोम-रोम से जैसे उमड़ा प्यार।
अनगिन इच्छाओं का संसार।
पहली बार
ऐसा अद्‌भुत उपहार!

स्वर्ण की सौगात

स्वर्ण की सौगात लायी भोर!

री जगो कलियो। उठो उपहार आँचल में भरो
सज सुनहरे रूप में, मधु भाव पाटल में भरो
भर नया उन्मेष अंगों में
झूम लो नव-नव उमंगों में
गंधवह शीतल तरंगों में
प्रीति-पुलकित हर लता चितचोर!

खोल दो अंतर झरोखे द्वार वातायन सभी
अब नहीं ऐसे अँधेरे में घिरे आनन कभी
स्वर्ण-सागर में नहाओ रे
आभरण से तन सजाओ रे
नव प्रभाती गीत गाओ रे
झमझमा कर नाच ले मन-मोर!

उषा रानी

नील नभ-सर में मुदित मुग्धा उषा-रानी नहाती है।

शशि-बंध में बँध, रात भर आसव पिया
प्रतिदान जिसका प्रीति पावन से दिया
नव अंगरागों से जगत सुरभित किया
सोच हेला-हाव, अरुणिम तार रेशम के बहाती है।

नव रंग सरसिज के भरे जिसका वदन
परितोष भावों को किये जैसे वहन
प्रिय कल्पना में मंजु मंगल मन मगन
रे अकारण हर दिशा सीकर उड़ाकर गहगहाती है।

सुहानी सुबह

जीवन की हर सुबह सुहानी हो।

भर लो हास बहारों का
नदियों कूल कछारों का
फूलों गजरों हारों का
कन-कन की हर्षान्त कहानी हो।
जीवन की हर सुबह सुहानी हो।

मीठा राग विहंगों का
पागल प्रेम उमंगों का
अंतर लाज-तरंगों का
छलिया दुनिया नहीं बिरानी हो।
जीवन की हर सुबह सुहानी हो।

शीतल नेह निगाहों से
भर दो दुनिया चाहों से
प्यार भरे गलबाहों से
लहकी-लहकी मधुर जवानी हो।
जीवन की हर सुबह सुहानी हो।

●

साँझ

उस ऊँचे टीले पर
कुछ सहमी-सी
काली, नंगी, अनगढ़ चट्टान पड़ी है।
सहमी-सी–
शायद,
उस पर अब कोई आकर लेटेगा।
कोई?
हाँ, हो सकता है–
चाँद-सितारों का प्रेमी हो,
कवि हो,
प्रिय से बिछुड़ा हो,
या कि जगत से रूठा हो।

टीले के चारों ओर
बड़ी दूर-दूर तक
भूरी मिट्टी पर
हरा-हरा क़ालीन बिछा है;
क़ालीन नहीं हो तो
कम्बल हो सकता है
जिसके अन्दर
कोई भी छिप सकता है।

पास सरोवर के
नरम हृदय की लहरों पर
सूरज की ठंडी किरणें
आलिंगन ढीला करती-सी
धीमे-धीमे
कल आने की बात
सुनाती हैं –

'देखो,
जैसे वह विहग-यूथ उड़ा आता है,
हम भी आएंगे।
अब तुम सो जाओ'।

फिर झोंका आया मंद हवा का
जैसे कोई रमणी
जॉरजेट की साड़ी पहने
निकली हो अभी निकट से।

और देखते ही
इस मन-मोहक दृश्य-चित्र पर
क्या कहें!
किस फूहड़ चित्रकार ने
काले रंग का ब्रुश
आहिस्ता-आहिस्ता
कितनी बेरहमी से चला दिया।

फिर क्या होता है
चाहे कितने ही छींटे
व्योम पर सफ़ेदी के फेंकें।

माँझी

साँझ की बेला घिरी, माँझी।

अब जलाया दीप होगा रे किसी ने
भर नयन में नीर,
और गाया गीत होगा रे किसी ने
साध कर मंजीर,
मर्म जीवन का भरे अविरल बुलाता
सिन्धु सिकता तीर,
स्वप्न की छाया गिरी, माँझी।

दिग्वधू-सा ही किया होगा
किसी ने कुंकुमी शृंगार,
झिलमिलाया सोम-सा होगा
किसी का रे रुपहला प्यार,
लौटते रंगीन विहगों की दिशा में
मोड़ दो पतवार,
सृष्टि तो माया निरी, माँझी।

रात

चाँदनी छिटकी हुई बेछोर,
नाचता है उल्लसित मन-मोर,
नींद आँखों से उलझकर हो गयी है दूर।

प्राण ने सुखमय नया संसार,
आज पलकों में किया साकार,
मूक नयनों का तभी यह बढ़ गया है नूर।

है बड़ी मोहक रुपहली रात,
दूर पूरब से बहा है वात,
व्योम में छाया हुआ निशि का नशा भरपूर।

प्राणमय कितना निशा का गान,
सुन जिसे रहता नहीं है ध्यान,
है छिपा कोई कहीं पर सृष्टि-भेद ज़रूर।

ज्योत्स्ना

मेरे पास यह आती हुई इतरा रही है ज्योत्स्ना,
मुझको देख एकाकी, सतत भरमा रही है ज्योत्स्ना।

धीरे से मुँडेरों पर उतरती आ रही है ज्योत्स्ना,
प्यारा और मीठा गीत, रानी गा रही है ज्योत्स्ना!

मेरे टीन पर, छत पर बिखर कर फैलती है ज्योत्स्ना,
मेरे हाथ से, मुख से निडर बन खेलती है ज्योत्स्ना।

सोने भी नहीं देती, स्वयं भी जागती है ज्योत्स्ना,
होती जब सुबह, जाने कहाँ जा भागती है ज्योत्स्ना!

मेरे से न जाने क्यों नहीं यह बोलती है ज्योत्स्ना,
प्राणों में अनोखा प्यार-अमृत घोलती है ज्योत्स्ना।

मृत्यु-बोध : जीवन-बोध

आभार

मृत्यु है;
मृत्यु निश्चित है,
अटल है –
        जीवन इसलिए ही तो
        इतना काम्य है।
        इसलिए ही तो
        जीवन-मरण में
        इतना परस्पर साम्य है।
मृत्यु ने ही
जीवन को दिया सौन्दर्य
इतना
अशेष-अपार।
        मृत्यु ने ही
        मानव को दिया
        जीवन-कला-सौकर्य
        इतना
        सिँगार-निखार।
नि:संदेह
है स्वीकार्य –
नश्वरता,
मर्त्य दर्शन / भाव
प्रतिपल मृत्यु-तनाव।
        आभार
        मृत्यु के प्रति
        प्राण का आभार।

●

आभार; पुनः

मौत ने ज़िंदगी को बड़ा ख़ूबसूरत बना दिया,
लोक को, असलियत में सुखद एक जन्नत बना दिया,
अर्थ हम प्यार का जान पाये, तभी तो सही-सही,
आदमी को अमर देव से, और उन्नत बना दिया।

●

पहेली

क्या कहा?
तन
रहने योग्य नहीं रहा!

इसलिए ...
आत्मन।
तुम चले गए।

नये की चाह में
किसी राह में।

कहाँ?
लेकिन कहाँ??
अज्ञात है,
सब अज्ञात है।
घुप अँधेरी रात है!
रहस्यपूर्ण
हर बात है।

प्रश्न किसका है?
उत्तर किसका है?

●

सचाई

मृत्यु नहीं होती
तो ईश्वर का भी अस्तित्व नहीं होता,
कभी नहीं करता
मानव
प्रारब्धवाद से समझौता।

ईश्वर प्रतीक है
ईश्वर प्रमाण है
        मानव की लाचारी का,
        मृत्यूपरान्त तैयारी का।

स्वर्ग-नरक का
सारा दर्शन-चिंतन
        कल्पित है।

मानव
मृत्यु-दूत की आहट से
हर क्षण आतंकित है,
रह-रह रोमांचित है।

मालूम है उसे –
'मृत्यु सुनिश्चित है।'
इसीलिए पग-पग पर
आशंकित है।

यही नहीं
तथाकथित मर्त्यलोक से
नितान्त अपरिचित है;

वह।
अतः तभी तो
जाता है
ईश्वर की शरण में
पाने चिर-शान्ति मरण में।

अतः तभी तो
गाता है –
एक-मात्र
'राम नाम सत्य है!'

अरे, जन्म-मृत्यु कुछ नहीं
उसी का
विनोद-क्रूर कृत्य है।
●

जन्म-मृत्यु

मृत्यु :
जन्म से बँधी अटूट डोर है।

जन्म :
एक ओर,
मृत्यु :
दूसरा प्रतीप छोर है।

जन्म - एक तट
मरण - विलोम तीर।

जन्म : हर्ष क्यों?
मृत्यु : पीर ... क्यों?
जन्म-मृत्यु
जब समान हैं?

एक / रूपवान,
दूसरा / महानिधान है।

जन्म – सूत्रपात है,
मृत्यु – नाश है : निघात है।

जन्म ... ज्ञात,
मृत्यु ... अ-ज्ञात।

जन्म : आदि,
मृत्यु : अन्त है।

जन्म : श्रीगणेश,
मृत्यु : क्षिति दिगन्त है।

जन्म : हाँ, हयात है,
मृत्यु : हा! विघात है।

जन्म : नव-प्रभात है,
मृत्यु : घोर रात है।
●

युग्म

चारों ओर फैली
मरुभूमि रेतीली
बुझते दीपक लौ-सी
भूरी, पिंगल।
पीत-हरित, जल-रहित
ढलती उम्र
मरणासन्न।

लेकिन
अनगिनती
लहराते ... हरिआते
मरुद्वीप।
कँटीले, पत्ते रहित
पनपते पेड़ –
जीवन-चिन्ह
पताकाएँ।
जलाशय –

आशय ... जीवन-द
प्राणद।

वास्तव

'मृत्यु –
जन्म है
पुनः - पुनः
आत्म-तत्त्व का।'

असत्य, इस विचार को
कि सत्य मान लें?
अंध मान्यता,
तर्क हीन मान्यता।

प्राण / पंचतत्त्व में विलीन,
अंत / एक सृष्टि का,
अंत / एक व्यक्ति का,
एक जीव का।

कहीं नहीं
यहाँ ... वहाँ।

सही यही
कि लय सदैव को।
न है नरक कहीं,
न स्वर्ग है कहीं,
यथार्थ लोक सत्य है।
मृत्यु सत्य है,
जन्म सत्य है।

प्रयोगरत

आदमी में –
चाह जीवन की
सनातन और सर्वाधिक प्रबल है।

जब कि
हर जीवन्त की
अन्तिम सचाई
मृत्यु है।
हाँ, अन्त निश्चित है,
अटल है।

लेकिन / सत्य है यह भी –
अमरता की : अजरता की
लहकती वासना का वेग
होगा कम नहीं,
अद्‌भुत पराक्रम आदमी का
चाहता कलरव,
रुदन मातम नहीं।
हर बार
ध्रुव मृति की चुनौती से
निरन्तर जूझना स्वीकार।
मृत्युंजय
बनेगा वह, बनेगा वह।

प्रार्थना

वांछित
अमरता नहीं,
चाहता हूँ अजरता।
सकल स्वास्थ्य, आरोग्य
निरुद्विग्नता –
तन और मन की।

अभिप्रेत वरदान यह
कल्पित किसी ईश से – नहीं।
स्व-साधित सतत साधना से –
आराधना से नहीं।

तन क्लेश-मुक्त,
मन क्लेश-मुक्त।

हाँ,
एक-सौ-और-पच्चीस वर्षों
जिएँ हम!
अपने लिए, दूसरों के लिए।

संकल्प

पूर्ण निष्ठावान
हम,
आश्वस्त हो उतरे
विकट जीवन-मरण के
द्वन्द्व में।
बन सिपाही
अमर जीवन-वाहिनी के,
घिर न पाएंगे
विपक्षी के किसी
छल-छन्द में।

हार जाएँ,
पर, वर्चस्व मानेंगे नहीं
तनिक भी मरण का,
अधिकार अपना
छिनने नहीं देंगे
जीवन वरण का।
जयघोष गूँजेगा
चरम निश्वास तक,
संघर्षरत
बल-प्राण जूझेगा
शेष आस / प्रयास तक।

जयघोष

सारा विश्व सोता है –
इतनी रात गुज़रे कौन रोता है?

सुना है –
पास के घर में
मृत्यु का धावा हुआ है,
सत्य है – कोई मुआ है।

यमदूत के
तीखे छुरे ने
आदमी को फिर छुआ है।

पहुँचो,
अमृत-सम्वेदना-लहरें लिए,
यह आदमी
फिर-फिर जिए!

जीवन-दुंदुभी बजती रहे,
क्षण-क्षण
भले ही, अरथियाँ सजती रहें।

आह्वान

अलख जगाने वाले
आये हैं,
नव-जीवन का प्रिय मधु गीत
सुनाने वाले आये हैं।
सोहर गाने वाले आये हैं।
उर-वीणा के तार-तार पर
जीवन-राग
बजाने वाले आये हैं।

मन से हारो, जागो।
तन के मारो, जागो।

जीवन के
लहराते सागर में कूदो।
ओ गोताख़ोरो!
जड़ता झकझोरो।

●

एक दिन

जीवन विजयी होगा
विश्वास करें,
नीच मीच से
न डरें, न डरें।
हर संशय का
नाश-विनाश करें।
जीवन जीतेगा
विश्वास करें।

घनघोर अँधेरा
मौत मरी का
छाएगा / डरपाएगा,
सूरज के बल पर / दम पर
विश्वास करें।

इसका
क़तरा-क़तरा फ़ाश करें।
चारों ओर प्रकाश भरें।
जीवन जीतेगा
विश्वास करें।

●

साम्य

गाता हूँ
विजय के गीत गाता हूँ।
मृत्यु पर
जीवन जगत की जीत गाता हूँ।
अति प्रिय वस्तु
जीवन-विस्फुरण की
बेधड़क जयकार गाता हूँ।

क़ब्रिस्तान के आकाश में
जो गूँजते हैं स्वर
परिन्दों के, स्वच्छन्द रिन्दों के
अनुवाद हैं –
मेरी जीवन-भावनाओं के।
सहचार हैं –
मेरी जीवन-अर्चनाओं के।

दह्शतअंगेज़

सावधान!
फहरा दी हैं हमने
घर-घर, गाँव-गाँव, नगर-नगर
जीवन की, नव-जीवन की
लाल पताकाएँ।

बस्ती-बस्ती, चौराहों-सतराहों पर,
यहाँ-वहाँ - ठाँव-ठाँव।
लहरा दी हैं रक्त-पताकाएँ।

अब नहीं चलेगा
आतंकी, घातक, जन-भक्षी,
मद-ज्वर-ग्रस्त
मरण-राक्षस का कोई भी दावँ।

तन के भीतर घुस कर
घात लगाता है,
अपने को अविजित यम का
दूत बताता है,
तन के भीतर
विस्फोटक-बारूद बिछाता है,

और ... अदृश स्थानों से
छिप-छिप कर
दूरस्थ-नियंत्रित-यंत्र चलाता है।
देखें,
अब और किधर से आता है।

आमंत्रण

मृत्यु –
आना, एक दिन ज़रूर आना।
और मुझे
अपने उड़नखटोले में बैठा कर ले जाना,
दूर ... बहुत दूर ... नरक में।

जिससे मैं
नरक-वासियों को
संगठित कर सकूँ,
उन्हें विद्रोह के लिए ललकार सकूँ,
ज़िंदगी बदलने के लिए
तैयार कर सकूँ।

नहीं मानता मैं किसी चित्रगुप्त को
किसी यमराज को,
चुनौती दूंगा उन्हें।

बस, ज़रा कूद तो जाऊँ
नरक-कुण्ड में।
मिल जाऊँ नरक-वासियों के
विशाल झुण्ड में।

मृत्यु-परी से

मृत्यु आओ – हम तैयार हैं।
मत समझो कि लाचार हैं।

पूर्व-सूचना दोगी नहीं क्या?
आभार मेरा लोगी नहीं क्या?
आओगी - बिना आहट किये
आश्चर्य देती!
नटखट बालिका की तरह।

ठीक है, स्वीकार है।
मेरी चहेती,
तुम्हारा खेल यह स्वीकार है।

चुपचाप आओ,
मृत्यु आओ, हम तैयार हैं।

अच्छी तरह समझते हैं –
कि जीवन-पुस्तिका का
उपसंहार हो तुम।
इसलिए – मेरे लिए
पूर्णता का शुभ-समाचार हो तुम।

आओ, मृत्यु आओ,
हम तैयार हैं!
प्रतीक्षा में तुम्हारी
सज-धज कर तैयार हैं!

निवेदन

मृत्यु –
क्या हुआ यदि तुम
स्त्री-लिंग हो,
तुम्हें मित्र बना सकता हूँ।

शरमाती क्यों हो?
आओ
हमजोली बनो ना।
हमख़ाना नहीं तो
हमसाया बनो ना।

चाँद के टुकड़े जैसी तुम
सामने वाली खिड़की से
झाँकना, आँकना।

और एक दिन अचानक
मुझे साथ ले चल पड़ना
प्रेत-लोक में।
यों ही
नोकझोंक में।

अन्तर

आपने याद किया
आभार।
मीठा दर्द दिया
स्वीकार।

कितना अद्‌भुत है संयोग
कि अन्तिम विदा
अरे! ओ प्रेम प्रथम!
आये
ओझल होती राह पर,
लिए चाह –
जो कभी पूरी होनी नहीं,
कभी वास्तव स्थूल छुअन से
सह-अनुभूत हमारी
यह दूरी होनी नहीं।

जाता हूँ –
याद लिए जाता हूँ,
दर्द लिए जाता हूँ।

अन्त

समर – अब कहाँ है?
सफ़र – अब कहाँ है?
थम गया सब
बहता उछलता नदी-जल तरल,
जम गया सब –
नसों में रुधिर की तरह।

दर्द से
देह की हड्डियाँ सब
चटखती लगातार,
अब कौन इन्हें दबाए
टूटती आख़िरी साँस तक?
अँधेरे-अँधेरे घिरे
जब न कोई पास तक।

लहर अब कहाँ?
एक ठहराव है,
ज़िंदगी अब –
शिथिल तार,
बिखराव है।

सत्य

प्राण-पखेरू उड़ जाएंगे,
उड़ जाएंगे!
प्राण-पखेरू उड़ जाएंगे!

काहे इतना जतन करे,
शाम-सबेरे भजन करे,
तेरे वश में क्या है रे
मन्दिर-मन्दिर नमन करे!

इक दिन तन के पिंजर से
प्राण-पखेरू उड़ जाएंगे!
जो कभी न वापस आएंगे।

उड़ जाएंगे
प्राण-पखेरू उड़ जाएंगे!

नमन

अलविदा!
जग की बहारो अलविदा!
ओ, दमकते चाँद
झिलमिलाते सित सितारो
अलविदा!
पहाड़ो ... घाटियो
ढालो ... कछारो
अलविदा!
उफ़नती सिन्धु-धारो
अलविदा!
फड़फड़ाती मोह की पाँखो,
छलछलाती प्यार की आँखो
अलविदा!

अटूटे बंध की बाँहो
अधूरी छूटती चाहो
अलविदा!
अलविदा!

अलविदा!

प्रारब्ध के मारे हुए
हम,
ज़िंदगी के खेल में हारे हुए
हम!

हाय!
अपनों से सताए,
हृदय पर चोट खाए,
सिर झुकाए
मौन
जाते हैं सदा को।

कभी भी
याद मत करना,
आज के दिन भी
सुनो,
स्मृति-दीप मत रखना।

निश्चिति

तय है कि तू
एक दिन
मृत्यु की गोद में
मौन सो जायगा।

तय है कि तू
एक दिन
मृत्यु के घोर अँधियार में
डूब खो जायगा।

तय है कि तू
एक दिन
त्याग कर रूप-श्री
भस्म में सात्
हो जायगा।

●

मृत्यु-पत्र

रोना नहीं,
दीन-निरीह होना नहीं !

आघात सहना,
संयमित रहना।

आडम्बरों से मुक्त
अन्तिम कर्म हो,
ध्यान में बस
पारलौकिक-पारमार्थिक मर्म हो !

मृत्यूपरान्त जगत व जीवन
न जाना किसी ने
न देखा किसी ने ....

निर्धारित व्यवस्थाएँ समस्त
कपोल-कल्पित है,
सब अतर्कित हैं।
अनुसरण उनका अवांछित है !

अंधानुयायी रे नहीं बनना,
ज्ञान के आलोक में
हो संस्कार-पूत उपासना।

आदेश यह
सद्धर्म सद्भावना।

●

जीवन-त्रासदी

अनुभूतियाँ : एक हताश व्यक्ति की

विडम्बना

ज़िंदगी सुकून थी; कराह बन गयी,
ज़िंदगी पवित्र थी; गुनाह बन गयी,
न्याय-सत्य-पक्ष की तरफ़ रही सदा
ज़िंदगी : फ़रेब की गवाह बन गयी!

●

परिणाम

हमने न हँसने की अरे, सौगंध तो खायी न थी,
यह नहायी आँसुओं से ज़िंदगी फिर मुसकरायी क्यों नहीं?
हमने अँधेरे से कभी रिश्ता बनाया ही नहीं,
स्याह फिर रातें हमारी रोशनी से जगमगायी क्यों नहीं?

●

यथावत्

ज़िंदगी में याद रखने योग्य कुछ भी तो हुआ नहीं,
बददुआ जानी नहीं, पायी किसी की भी दुआ नहीं,
अजनबी-अनजान अपने ही नगर में मूक हम रहे
शत्रुता या मित्रता रख कर किसी ने भी छुआ नहीं!

●

अप्राप्य

कहाँ वह पा सका जीवन कि जिसकी साधना की?
कहाँ वह पा सका चाहत कि जिसकी कामना की?
अधूरी मूर्ति है अब-तक कि जिसको ढालने की
सतत निष्ठा भरे मन से कठिनतम सर्जना की!

●

कहाँ जाएँ?

वेदना ओढ़े
कहाँ जाएँ!

उठ रहीं लहरें
अभोगे दर्द की,
कैसे सहज बन
मुसकराएँ!

रुँधा है कंठ,
कैसे
गीत में उल्लास गाएँ!

टूटे हाथ जब
कैसे बजाएँ साज़!

सन्न हैं जब पैर,
कैसे झूम कर नाचें
व थिरके आज!

खंडित ज़िंदगी,
टुकड़े समेटे
अंग जोड़े
लड़खड़ाते
रे कहाँ जाएँ!

दिशा कोई
हमें हमदर्द कोई तो बताए!

विवश

अपना बसेरा छोड़कर
अब
हम कहाँ जाएँ?

नहीं कोई कहीं –
अपना समझ
जो राग से / सच्चे हृदय से
मुक्त अपनाए!

देखते ही तन,
गले में डाल बाहें
झूम जाए!

प्यार की लहरें उठें,
जो – शीर्ण इस अस्तित्व को
फिर-फिर समूचा
चूम जाए!
शेष –
हत वीरान जीवन
सदा को
पा सके निस्तार,
ऐसी युक्ति
कोई तो बताए!

दुर्भाग्य

बेहद ख़ूबसूरत थी
हमारी ज़िन्दगी,
लेकिन
अचानक एक दिन
यों
बदनुमा ... बदरंग
कैसे हो गयी?

भूल कर भी,
जब नहीं की भूल कोई
फिर
भुलावों-भटकनों में राह
कैसे खो गयी?

रे, अब कहाँ जाएँ,
इस ज़िंदगी का
रूप-रस
फिर
कब ... कहाँ पाएँ?

अधिक अच्छा यही होगा
हमेशा के लिए
चिर-शान्ति में
चुपचाप सो जाएँ!

वास्तविकता

पछतावा ही पछतावा है!
मन
तीव्र धधकता लावा है!
जब-तब
चट-चट करते अंगारों का
मर्मान्तक धावा है!

संबंध निभाते,
अपनों को अपनाते
गले लगाते,
उनके सुख-दुख में
जीते कुछ क्षण,
करते सार्थक
रीता जीवन!

लेकिन सब व्यर्थ गया,
कहते हैं –
होता है फिर-फिर जन्म नया,
पर, लगता यह सब
बहलावा है!
सच,
केवल पछतावा है!
शेष छलावा है!

पुनः प्रारम्भ

इस ज़िन्दगी को
यदि पुनः
जीया जा सके –
तो शायद
सुखद अनुभूतियों के
फूल खिल जाएँ!
हृदय को
राग के उपहार मिल जाएँ!
आत्मा में
मनोरम कामनाओं की
सुहानी गंध बस जाए!
दूर कर
अन्तर / परायापन
कि सब हो एकरस जाएँ!

किन्तु
क्या सम्भव
पृथक होना
अतीत-व्यतीत से,
इतिहास के
अभिलेख से,
पूर्व-अंकित रेख से?

सत्य

दिल भारी है,
बेहद भारी है,
पग-पग पर लाचारी है!

रो लें,
मन-ही-मन रो लें,
एकांत क्षणों में रो लें!

असह घुटन है,
बड़ी थकन है!
हलके हो लें,
हाँ, कुछ हलके हो लें!

रुदन –
मनुज का
जनम-जनम का साथी है,
स्वार्थी है,
स्व-हित साधक है,
संरक्षक है।
रो लें!
सारा कल्मष धो लें!
रोना –
स्वाभाविक है, नैसर्गिक है!
रोना –
जीवन का सच है,
रक्षा-मंत्र कवच है!

भ्रम

असह है, आह!
प्रीति का निर्वाह –
छल-छद्म मय,
मिथ्या .. भुलावा
झूठ ... मायाजाल।

तब
यह ज़िन्दगी –
गदली - कुरूपा
अति भयावह
धधकता दह!

आश्चर्य

गँवा सब,
बेमुरौवत धूर्त दुनिया में
अकेले रह गये!

सचाई महज़
कहना चाहते थे
और ही कुछ कह गये!

जिसे समझा किये अपना
उसी ने मर्मघाती चोट की
उसी की बेवफ़ाई
हम
अरे, खामोश कैसे सह गये!

भुक्तभोगी

रौरव नरक-कुण्ड में
मर-मर कर जीना
कैसा लगता है
कोई हमसे पूछे!

सोचे-समझे
मूक विवश बन
विष के पैमाने पीना
कैसा लगता है
कोई हमसे पूछे!

हृदयाघातों को सहकर
हँस-हँस
अपने हाथों
अपने घावों को सीना
कैसा लगता है
कोई हमसे पूछे!

तृषित

बहुत प्यासा हूँ
प्यासा बहुत हूँ!

ज़िंदगी –
बेहद उदास-हताश है!

ग़मगीन है मन
विरक्त / उजाड़ / उचाट,
बुझती नहीं है प्यास
कंठ-चुभती प्यास
बुझती नहीं!

प्यासा रहा भर-ज़िन्दगी,
बेचैन हो-हो
बहुत तड़पा-छटपटाया ...

भागा / बेतहाशा
इस मरुभूमि ...
उस मरुभूमि भागा,
जहाँ भी ज़रा भी दी दिखाई आस
भागा।

बुझाने प्यास
सब सहता रहा;
दहता रहा,
लपट-लपट घिर
सिर से पैर तक
गलता-पिघलता रहा!

अतृप्त अबुझ
सनातन प्यास ले
एक दिन
दम तोड़ दूंगा,
रसों डूबी
नहायी तर-बतर
रंगीन दुनिया
छोड़ दूंगा!

विश्वास

जीवन चाहता जैसा
उसे पाने
अभी भी मैं प्रतीक्षा में।

सहज हो जी रहा
इस आस पर, विश्वास पर
जैसा कि जीवन चाहता –
आएगा ... ज़रूर-ज़रूर आएगा
एक दिन!

चाहता जो गीत मैं गाना
विकल रचना-चेतना में
भावना-विह्वल
सजग जीवित रहेगा,
और उतरेगा उसी लय में
किसी भी क्षण,
जिस तरह मैं
चाहता हूँ गुनगुनाना!

ऊमस भरा
बदला नहीं मौसम,
वांछित बरसता नेह का
सावन नहीं आया,
वांछित सरस रंगों भरा
माधव नहीं छाया!

फुहारो! मोह-रागो!

बाट जोहूंगा तुम्हारी!

एक दिन
सच, रिमझिमाएगा
अनेक-अनेक मेघों से लदा
आकाश!
दहकेंगे हज़ारों लाल-लाल
पलाश!

●

व्यतीत

दिख रहा अतीत
साफ़ फ़िल्म की तरह –
सवाक् रंगमय सजीव!

पृष्ठभूमि में ध्वनित
अमंद वाद्य-गीत!
(द्रश्य वास्तविक अतीव!)

उतर-उभर रहे
तमाम चित्र –
हार / जीत के
शत्रु / मीत के,
क्रोध / आग के
नेह / राग के!

आह, ज़िंदगी
थकी-थकी
बुझी-बुझी
अचान
किस पड़ाव पर
लहर-लहर
ठहर गयी!
बिखर-बिखर
सिमट गयी,
उलट-पुलट गयी!

अपूर्व शांति है
न वाद या विवाद,

शेष सिर्फ़ याद!
दुराव है न भेद है,
हर्ष है न खेद है!

न चाह है,
न राह है!

आख़िर ....

जीवन भर –
अपनों ने ही
छल और फ़रेब किया,
आख़िर,
जिएँ कहाँ?

मरना चाहा;
लेकिन
घर-बाहर
घेरे हैं 'शुभ-चिंतक',
आख़िर,
विष पिएँ कहाँ?

सोते-जगते
स्मृतियाँ
हाय, कुरेद रही हैं,
कच्चे घावों को
आख़िर,
सिएँ कहाँ?

परिणाम

ज़िन्दगी –
गुज़र गयी
कराहते-कराहते!
आह, जी लिए
अनेक वर्ष
चाहते, न चाहते!

हो गये तबाह
बेगुनाह!
छद्म मान के लिए
प्रकृति-विरुद्ध
धर्म-भावना
निबाहते-निबाहते!

प्रबोध

अपने दुख को
पर्वत मत समझो,
दुनिया –
बहुत दुखी है!
हर प्राणी
अपनी-अपनी पीड़ा से
आहत है,
कौन सुखी है?

जीवन में
सुख की चाह करो मत,
सोते-जगते
आह भरो मत!

जीवन –
नाम :
सतत दहते रहने का,
काल-धार में
अविरत बहते रहने का!

अपने दुख को
इतना भारी मत समझो,
जीना–
लाचारी मत समझो!

परिचय

हारा नहीं हूँ!
मैं अभी हारा नहीं हूँ!
हाँ, कभी हारा नहीं हूँ!

धधकता सूर्य हूँ,
मद्धिम द्युति भरा
हत काँपता
तारा नहीं हूँ!

हूँ शक्ति-आराधक,
अबोध निरीह बेचारा नहीं हूँ!

जग जान ले,
पहचान ले
विस्तृत उफ़नता सिन्धु हूँ मैं,
क्षीण गति
धारा नहीं हूँ!

अपना भाग्य-निर्माता
स्वयं हूँ मैं,
नहीं स्वीकार्य –
कल्पित पारलौकिक सृष्टि का
अस्तित्व!

मत लो नाम करुणा का,
अदृश प्रारब्ध का
मारा नहीं हूँ!

डॉ. महेंद्रभटनागर

प्रस्तुति : डा. वीरेन्द्र सिंह यादव, रीडर : हिन्दी-विभाग

डॉ. शकुन्तला मिश्रा पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)

द्वि-भाषिक कविहिन्दी और अंग्रेजी।

सन् 1941 के लगभग अंत से काव्य-रचना आरम्भ। तब कवि (पन्द्रह-वर्षीय) 'विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर' में इंटरमीडिएट (प्रथम वर्ष) का छात्र था। सम्भवतः प्रथम कविता 'सुख-दुख' है; जो वार्षिक पत्रिका **'विक्टोरिया कॉलेज मेगजीन'** के किसी अंक में छपी थी। वस्तुतः प्रथम प्रकाशित कविता **'हुंकार'** है; जो **'विशाल भारत'** (कलकत्ता) के मार्च 1944 के अंक में प्रकाशित हुई।

लगभग छह-वर्ष की काव्य-रचना का परिप्रेक्ष्य स्वतंत्रता-पूर्व भारत; शेष स्वातंत्र्योत्तर।

हिन्दी की तत्कालीन तीनों काव्य-धाराओं से सम्पृक्तराष्ट्रीय काव्य-धारा, उत्तर छायावादी गीति-काव्य, प्रगतिवादी कविता।

समाजार्थिक-राजनीतिक-राष्ट्रीय चेतना-सम्पन्न रचनाकार।

सन् 1946 से प्रगतिवादी काव्यान्दोलन से सक्रिय रूप से सम्बद्ध । 'हंस' (बनारस / इलाहाबाद) में कविताओं का प्रकाशन। तदुपरांत अन्य जनवादी-वाम पत्रिकाओं में भी। प्रगतिशील हिन्दी कविता के द्वितीय उत्थान के चर्चित हस्ताक्षर।

सन् 1949 से काव्य-कृतियों का क्रमशः प्रकाशन।

प्रगतिशील मानवतावादी कवि के रूप में प्रतिष्ठित।

समाजार्थिक यथार्थ के अतिरिक्त अन्य प्रमुख काव्य-विषयप्रेम, प्रकृति, जीवन-दर्शन।

दर्द की गहन अनुभूतियों के समान्तर जीवन और जगत के प्रति आस्थावान कवि। अदम्य जिजीविषा एवं आशा-विश्वास के अद्‌भुत-अकम्प स्वरों के सर्जक।

काव्य-शिल्प के प्रति विशेष रूप से जागरूक।

छंदबद्ध और मुक्त-छंद दोनों में काव्य-सृष्टि। छंद-मुक्त गद्यात्मक कविता अत्यल्प। मुक्त-छंद की रचनाएँ भी मात्रिक छंदों से अनुशासित।

काव्य-भाषा में तत्सम शब्दों के अतिरिक्त तद्‌भव व देशज शब्दों एवं अरबी-फ़ारसी (उर्दू), अंग्रेजी आदि के प्रचलित शब्दों का प्रचुर प्रयोग।

सर्वत्र प्रांजल अभिव्यक्ति। लक्षणा-व्यंजना भी दुरूह नहीं। सहज काव्य के पुरस्कर्ता। सीमित प्रसंग-गर्भत्व।

विचारों-भावों को प्रधनता। कविता की अन्तर्वस्तु के प्रति सजग।

❑

26 जून 1926 को प्रातः 6 बजे झाँसी (उ. प्र.) में, ननसार में, जन्म ।

प्रारम्भिक शिक्षा झाँसी, मुरार (ग्वालियर), सबलगढ़ (मुरैना) में। शासकीय विद्यालय, मुरार (ग्वालियर) से मैट्रिक (सन् 1941), विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर (सत्र 41-42) और माधव महाविद्यालय, उज्जैन (सत्र 42-43) से इंटरमीडिएट (सन् 1943), विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर से बी.ए. (सन् 1945), नागपुर विश्वविद्यालय से सन् 1948 में एम.ए. (हिन्दी) और सन् 1957 में 'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद' विषय पर पी-एच.डी.

जुलाई 1945 से अध्यापन-कार्यउज्जैन, देवास, धार, दतिया, इंदौर, ग्वालियर, महू, मंदसौर में। 'कमलाराजा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर' (जीवाजी विश्वद्यिालय, ग्वालियर) से 1 जुलाई 1984 को प्रोफेसर-अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त।

कार्यक्षेत्र : चम्बल-अंचल, मालवा, बुंदेलखंड।

सम्प्रति शोध-निर्देशकहिन्दी भाषा एवं साहित्य।

❑

अधिकांश साहित्य **'महेन्द्रभटनागर-समग्र'** के छह-खंडों में एवं काव्य-सृष्टि **'महेन्द्रभटनागर की कविता-गंगा'** के तीन खंडों में प्रकाशित ।

महेन्द्रभटनागर की कविता-गंगा

खंड : 1

1 तारों के गीत
2 विहान
3 अन्तराल
4 अभियान
5 बदलता युग
6 टूटती शृंखलाएँ

खंड : 2

7 नयी चेतना
8 मधुरिमा

9 जिजीविषा
10 संतरण
11 संवर्त

खंड : 3

12 संकल्प
13 जूझते हुए
14 जीने के लिए
15 आहत युग
16 अनुभूत क्षण
17 मृत्यु-बोध : जीवन-बोध
18 राग-संवेदन

(प्रकाश्य)

19 विराम

प्रतिनिधि संकलन

1 सृजन-यात्रा : महेंद्रभटनागर (कविता-संचयिता)
2 सरोकार और सृजन (जनसंवेदना-जनचेतना से सम्बद्ध प्रतिनिधि कविताएँ)
3 जनकवि महेंद्रभटनागर (समाजार्थिक चेतना से सम्बद्ध / सं. डॉ. हरदयाल)
4 जनवादी कवि महेंद्रभटनागर (समाजार्थिक चेतना से सम्बद्ध / सं. डॉ. वीरेंद्र सिंह यादव)
5 प्रगतिवादी कवि महेंद्रभटनागर (समाजार्थिक चेतना से सम्बद्ध)
6 जीवन-राग / जीवन : जैसा जो है! (जीवन-संघर्ष और दर्शन से सम्बद्ध / द्वि-भाषिक : हिंदी-अंग्रेज़ी)
7 चाँद, मेरे प्यार! (प्रेम-कविताएँ / द्वि-भाषिक : हिंदी-अंग्रेज़ी)
8 इंद्रधनुष / गौरैया एवं अन्य कविताएँ (प्रकृति-प्रेमकी कविताएँ / द्वि-भाषिक : हिंदी-अंग्रेज़ी)
9 मृत्यु और जीवन (द्वि-भाषिक : हिंदी-अंग्रेज़ी)
10 जीवन गीत बन जाए (महेंद्रभटनागर के गीत / प्रस्तुति - आदित्य कुमार 'विक्रम')
11 महेंद्रभटनागर के नवगीत : दृष्टि और सृष्टि / सं. देवेंद्र शर्मा 'इन्द्र'
12 आवाज़ आती है! : महेंद्रभटनागर (संचयन / सं. डॉ. रंजना अरगड़े)
13 कविश्री : महेंद्रभटनागर (कविश्री-मालान्तर्गत) (संयोजक : शिवमंगलसिंह 'सुमन' / सम्पादक : डॉ. शम्भूनाथ चतुर्वेदी)

❑

महेन्द्रभटनागर - समग्र

खंड : 1 - कविता
तारों के गीत, विहान, अन्तराल, अभियान, बदलता युग।
परिशिष्ट : आत्म-कथ्य - जीवन और कर्तृत्व,
अध्ययन-सामग्री एवं अन्य संदर्भ।

खंड : 2 - कविता
टूटती शृंखलाएँ, नयी चेतना, मधुरिमा, जिजीविषा, संतरण।

खंड : 3 - कविता
संवर्त, संकल्प, जूझते हुए, जीने के लिए, आहत युग, अनुभूत क्षण।
परिशिष्ट : काव्य-कृतियों की भूमिकाएँ।

खंड : 4 - आलोचना
हिन्दी कथा-साहित्य, हिन्दी-नाटक।
परिशिष्ट : साक्षात्कार।

खंड : 5 - आलोचना
साहित्य-रूपों का सैद्धान्तिक विवेचन एवं उनका ऐतिहासिक क्रम-विकास,
आधुनिक काव्य।
परिशिष्ट : साक्षात्कार, आदि।

खंड : 6 - विविध
साक्षात्कार, रेखाचित्र / लघुकथाएँ, एकांकी / रेडियो-फीचर, गद्य-काव्य, वार्ताएँ,
आलेख, बाल / किशोर साहित्य / संस्मरणिका / पत्रावली।
परिशिष्ट : चित्रावली।

खंड : 7 - शोध
समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद, प्रेमचंद के कथा-पात्र।

Pub. Nirmal Publications, A-139, Gali No. 3, SauFoot Road,
Kabir Nagar,Shahdara, DELHI — 110 094 [Rs. 1800/-]

अध्ययन

(1) महेन्द्रभटनागर का काव्य-लोक
वंशीधर सिंह

(2 महेन्द्रभटनागर की काव्य-संवेदना : अन्तःअनुशासनीय आकलन
डॉ. वीरेंद्र सिंह

(3) कवि महेन्द्रभटनागर का रचना-कर्म ('समग्र' - खंड 1,2,3)
डॉ. किरणशंकर प्रसाद

(4) डॉ. महेन्द्रभटनागर की काव्य-साधना
ममता मिश्रा

सम्पादित मूल्यांकन-ग्रंथ

(5) महेन्द्रभटनागर की कविता : संवेदना और सर्जना
सं. डॉ. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'

(6) महेन्द्रभटनागर की कविता : अन्तर्वस्तु और अभिव्यक्ति
सं. डॉ. मनोज मोक्षेन्द्र

(7) कवि महेन्द्रभटनागर की रचनाधर्मिता
सं. डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय

(8) महेन्द्रभटनागर की काव्य-यात्रा
सं. डॉ. रामसजन पाण्डेय

(9) डॉ. महेन्द्रभटनागर का कवि-व्यक्तित्व
सं. डॉ. रवि रंजन

(10) सामाजिक चेतना के शिल्पी : कवि महेन्द्रभटनागर
सं. डॉ. हरिचरण शर्मा

(11) कवि महेन्द्रभटनागर का रचना-संसार
सं. डॉ. विनयमोहन शर्मा

(12) कवि महेन्द्रभटनागर : सृजन और मूल्यांकन
सं. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला

(13) मृत्यु और जीवन (महेंद्रभटनागर की 50 कविताएँ)
सं. डॉ. चम्बियाल

शोध-प्रबन्ध

प्रकाशित

(1) महेन्द्रभटनागर की सर्जनशीलता
डॉ. विनीता मानेकर

(2) प्रगतिवादी कवि महेन्द्रभटनागर : अनुभूति और अभिव्यक्ति
डॉ. माधुरी शुक्ला

(3) महेन्द्रभटनागर के काव्य का वैचारिक एवं संवेदनात्मक धरातल
डॉ. रजत कुमार षड़ंगी

अप्रकाशित

(4) डॉ. महेन्द्रभटनागर के काव्य का नव-स्वछंदतावादी मूल्यांकन
डॉ. कविता शर्मा

(5) महेन्द्रभटनागर के काव्य में संवेदना के विविध आयाम
डॉ. प्रमोद कुमार

(6) डॉ. महेन्द्रभटनागर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
डॉ. मंगलोर अब्दुलरजाक बाबुसाब

(7) डॉ. महेन्द्रभटनागर के काव्य में सांस्कृतिक चेतना
डॉ. अलका रानी सिंह

(8) महेन्द्रभटनागर का काव्य : कथ्य और शिल्प
डॉ. मीना गामी

(9) डॉ. महेन्द्रभटनागर के काव्य में समसामयिकता
डॉ. विपुल रणछोड़भाई जोधाणी

(10) डॉ. महेन्द्रभटनागर का गीति--काव्य : संवेदना और शिल्प
डॉ. रजनीकान्त सिंह

(11) महेंद्रभटनागर की कविता : एक मूल्यांकन
डॉ. रोशनी बी. एस.

(12) कवि महेंद्रभटनागर की प्रगतिवादी काव्य-चेतना : एक अनुशीलन
डॉ. गिरिराज कुमार बिरादर

□□

सह-लेखन

हिन्दी साहित्य कोश
(भाग1 / द्वितीय संस्करण / ज्ञानमंडल, वाराणसी),

.

तुलनात्मक साहित्य विश्वकोशसिद्धान्त और अनुप्रयोग
(खंड1 / महात्मा गांधी अन्तर्-राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा)

□□

सम्पादन

'सन्ध्या' (मासिक / उज्जैन 1948-49),
'प्रतिकल्पा' (त्रैमासिक / उज्जैन 1958)

□□

सम्मान / पुरस्कार

(क) 'कला-परिषद्' मध्य-भारत सरकार ने 1952 में।
(ख) 'मध्य-प्रदेश शासन साहित्य परिषद्', भोपाल ने 1958 और 1960 में।
(ग) 'मध्य-भारत हिन्दी साहित्य सभा', ग्वालियर ने 1979
(घ) 'मध्य-प्रदेश साहित्य परिषद्', भोपाल ने 1985 में।
(च) 'ग्वालियर साहित्य अकादमी' द्वारा अलंकरण-सम्मान, 2004
(छ) 'मध्य-प्रदेश लेखक संघ', भोपाल ने 2006 में।
(ज) हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग / जगन्नाथपुरी अधिवेशन 2010 में सर्वोच्च सम्मान **'साहित्यवाचस्पति'**।
(झ) जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर द्वारा 'हिंदी-दिवस : 2012' पर **'हिंदी-सेवी'** सम्मान।
(ट) भारतीय वाङ्मय पीठ, कोलकाता द्वारा **'भारत गौरव सारस्वत सम्मान'** : 2015

❑

CRITICAL STUDY OF MAHENDRA BHATNAGAR'S POETRY

.

[1] Living Through Challenges :
A Study of Dr.Mahendra Bhatnagar's Poetry
By Dr. B.C. Dwivedy.

.

[2] Poet Dr. Mahendra Bhatnagar : His Mind And Art
(In Eng. & French)
Ed. Dr. S.C. Dwivedi & Dr. Shubha Dwivedi

[3] Concerns and Creation
[A CRITICAL STUDY OF MAHENDRA BHATNAGAR'S POETRY]
Ed. Dr. R. K. Bhushan

[4] DR. MAHENDRA BHATNAGAR'S POETRY :
IN THE EYES OF CRITICS [e-book.]

By Kedar Nath Sharma

[5] DEATH and LIFE [50 Poems of Mahendra Bhatnagar] : Criticism
Ed. Dr. D. C. Chambial

[6] Poet Mahendra Bhatnagar : Realistic and Visionary Aspects
[Edited / Forthcoming]

[7] Post-Independence Voice For Social Harmony and Humanism : A Study of Selected Poems of Mahendra Bhatnagar
By Dr. Rama Krishnan Karthikeyan
[Thesis / Forthcoming]

❑

Distinguished Anthologies [English]

[1] SELECTED POEMS OF MAHENDRA BHATNAGAR

[2] ENGRAVED ON THE CANVAS OF TIME (Vol. - 1 & 2)

[3] STRUGGLING FOR LIFE

[4] LOVE POEMS

[5] NATURE POEMS

[6] DEATH AND LIFE

❑

Bilingual Collections Of Poetry

[In English & Hindi]

[1] Forty Poems of Mahendra Bhatnagar
[2] After The Forty Poems
[3] Exuberance and other poems
[4] Dr. Mahendra Bhatnagar's Poetry
[5] Death-Perception : Life-Perception
[6] Poems : For A Better World
[7] Passion and Compassion
[8] Lyric-Lute
[9] A Handful of Light
[10] New Enlightened World
[11] Dawn to Dusk

❑

Distinguished Anthologies [Bilingual : Hindi-English]

[1] POEMS : FOR HUMAN DIGNITY
[Poems of social harmony & humanism : realistic & visionary aspects.]

[2] LIFE : AS IT IS
[Poems of faith & optimism : delight & pain. Philosophy of life.]

[3] O, MOON, MY SWEET-HEARET!
[Love poems]

[4] SPARROW and other poems
[Nature Poems]

[5] DEATH and LIFE
[Poems on Death-perception : Life-perception & Critical Study

❑

Translations :

In French :
A Modern Indian Poet : Dr. Mahendra Bhatnagar : UN POÈTE INDIEN ET MODERNE
Tr. Mrs. Purnima Ray

❑

In Czech, Japanese, Nepali
.In Tamil : (1) Kaalan Maarum
(2) Mahendra Bhatnagarin Kavithaigal.
In Telugu : Deepanni Veliginchu.
In Kannad, In Gujrati & In Bangla :
Mrityu-Bodh : Jeewan-Bodh.
In Marathi : Samkalp Aaani Anaya Kavita
In Oriya : Kala-Sadhna.
In Malyalam, Gujrati ['Rag-Samvedan']
Manipuri, Urdu, Sindhi, Punjabi.

❑

Address / पता
110, BalwantNagar, Gandhi Road, GWALIOR — 474 002 [M.P.]
110, बलवन्तनगर, गाांधी रोड, ग्वालियर474 002 (म. प्र.) /
फोन 0751-4092908 / मो. 81 09 73 00 48
ई-मेल : drmahendra02@gmail.com

BIODATA — Internet Link :
http://en.wikipedia.org/wiki/Mahendra_Bhatnagar
[In English & Hindi]

❑

महेंद्रभटनागर लगभग बीसवीं सदी के मध्य से ही हिंदी काव्य-परिदृश्य पर अपनी रचनात्मक शक्ति एवं सीमा के साथ कमोबेश चर्चा में रहे हैं। ... अन्तर्वस्तु की दृष्टि से महेंद्रभटनागर की कविताएँ वैविध्य पूर्ण हैं। उनमें यथास्थिति के विरुद्ध गहरा आक्रोश मौजूद है। तटस्थता की ऐयाशी के बजाय वहाँ एक ख़ास क़िस्म की रचनात्मक बेचैनी मिलती है, जिसके तहत कवि अपने समय और सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं को उसके दिनानुदिन तीव्रतर होते जा रहे अन्तर्विरोधों एवं संघर्ष को वाणी देता रहा है। इस दरमयान हर कविता का अपने परिवेश के तमाम अन्तर्विरोधों एवं संघर्षों से पूर्ण सामंजस्य स्थापित हो गया हो, यह ज़रूरी नहीं है, पर महेंद्रभटनागर के रचना-संसार पर मुक़म्मल तौर से नज़र दौड़ाने पर उनके अन्तःकरण के व्यापक आयतन का पता चलता है, जिसे कतई भुलाया या झुठलाया नहीं जा सकता। ... उनकी रचना में हमारे समय की वर्चस्वशाली संस्कृति के खिलाफ़ किसी जेहादी तेवर के बजाय अपने जातीय जीवन से तादात्म्य क़ायम कर वहीं से प्रतिरोध के सौन्दर्यबोधात्मक उपकरण ग्रहण किये गये हैं। ... काव्य-सृजन के क्षेत्र में आत्यांतिक वैचारिकता से पैदा हुए मर्सियाकरण के इस दौर में अपने परिवेश के प्रति महेंद्रभटनागर के कवि की भावनात्मक संलग्नता एवं रचनात्मक आवेगशीलता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ... जहाँ तक उनकी काव्य-भाषा का ताल्लुक है, हम पाते हैं कि कवि ने संस्कृत और अंगरेज़ी के तमाम आरोपित प्रभावों से मुक्त करके उसके सरल और देसी रूप को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। दूसरे शब्दों में कहें तो बोलचाल का लहज़ा एवं व्यवहार ही वस्तुतः उनकी कविताओं की भाषिक संरचना का एकमात्र आधार है। इसके चलते यदि उनकी काव्य-भाषा तत्सम से तद्भव की ओर उन्मुख हुई है, तो यह स्वाभाविक ही है। कारण यह है कि तद्भवीकरण हिंदी के मिज़ाज में है, जो इसके जनभाषा होने का सबूत भी है। सच तो यह है कि उनकी कविता में रचना-विशेष की नैसर्गिक आकांक्षा के अनुरूप विविध भाषिक प्रयोगों के नमूने मिलते हैं और यह एक कवि की अनुभूति की व्यापकता एवं गहराई का परिचायक है। समग्रतः यह कहा सकता है कि महेंद्रभटनागर की कविता बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की तमाम प्रगतिशील सांस्कृतिक चिंतन सरणियों एवं कलात्मक तकनीकों का वरण करने के बावजूद आदि से अंत तक कविता बनी रहती है, कोरा भावोच्छ्वास या नारा नहीं। ... उसकी कविता में एक संवेदनशील कवि की वैचारिकता एवं विचारक की संवेदनशीलता के बीच उत्पन्न सर्जनात्मक तनाव विद्यमान है। .. विष्णु नागर की एक काव्य-पंक्ति उधार लेकर कहें तो कवि महेंद्रभटनागर की कविता ऐसी 'अच्छी कविता' है, जो न केवल 'सबसे अच्छे दिनों में याद आएगी', बल्कि वह 'सबसे बुरे दिनों में भी पहचानी जाएगी।'

डॉ. रविरंजन
(केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद)

"The thing which strikes foremost is the note of blazing optimism coming out of these poems, be they songs of love, songs of future of man or songs of the advent of a new era ushered in by the common man all over the world. Though unfortunately I cannot share this optimism, I am deeply moved by the vigour with which it has been projected by the poet. Mahendra Bhatnagar is Browning, Shelley and Maykovsky welded into one, he is a visionary, he is a comrade-in-arms and he is an architect. His 'Man fired with faith divine moves on' because he is firm in his conviction that 'one day the heart-rose shall bloom in the midst of impediments galore.' He seeks strength from 'the firmament' which 'has changed its colour' and from the wind' which is always 'humming a tune', from the 'gracious mother earth' wich is blessing man with a life - 'long and happy'.

He sings of youth in a new vein, youth for him is not a passing phase, it is something 'which endures'. To him woman no more bears 'frailty' as her other name, she is no longer 'a source of pleasure and pastime'. In this emancipated woman he has found a companion. He is 'never alone', 'the resurgent age is with him', the future is driving him on. These are a few pieces which reflect the inner struggle between this optimism and disillusionment, but they are subdued by the dominating voice of hope.Such a sincere optimism is a rare quality and deserves full applause; more so, when we have the perspective of a sad and sick man of today.

The poet has a very sensitive ear for cadences and knows how to use them. His diction is chaste though racy, transparent and yet colourful, his imgery drawn partly from commonplace of life and partly from poetic conventions, is simple and effective, it is not pretentious, as the so called modern imagery is and is the most suited instrument for the content.

— Dr. Vidyaniwas Mishra

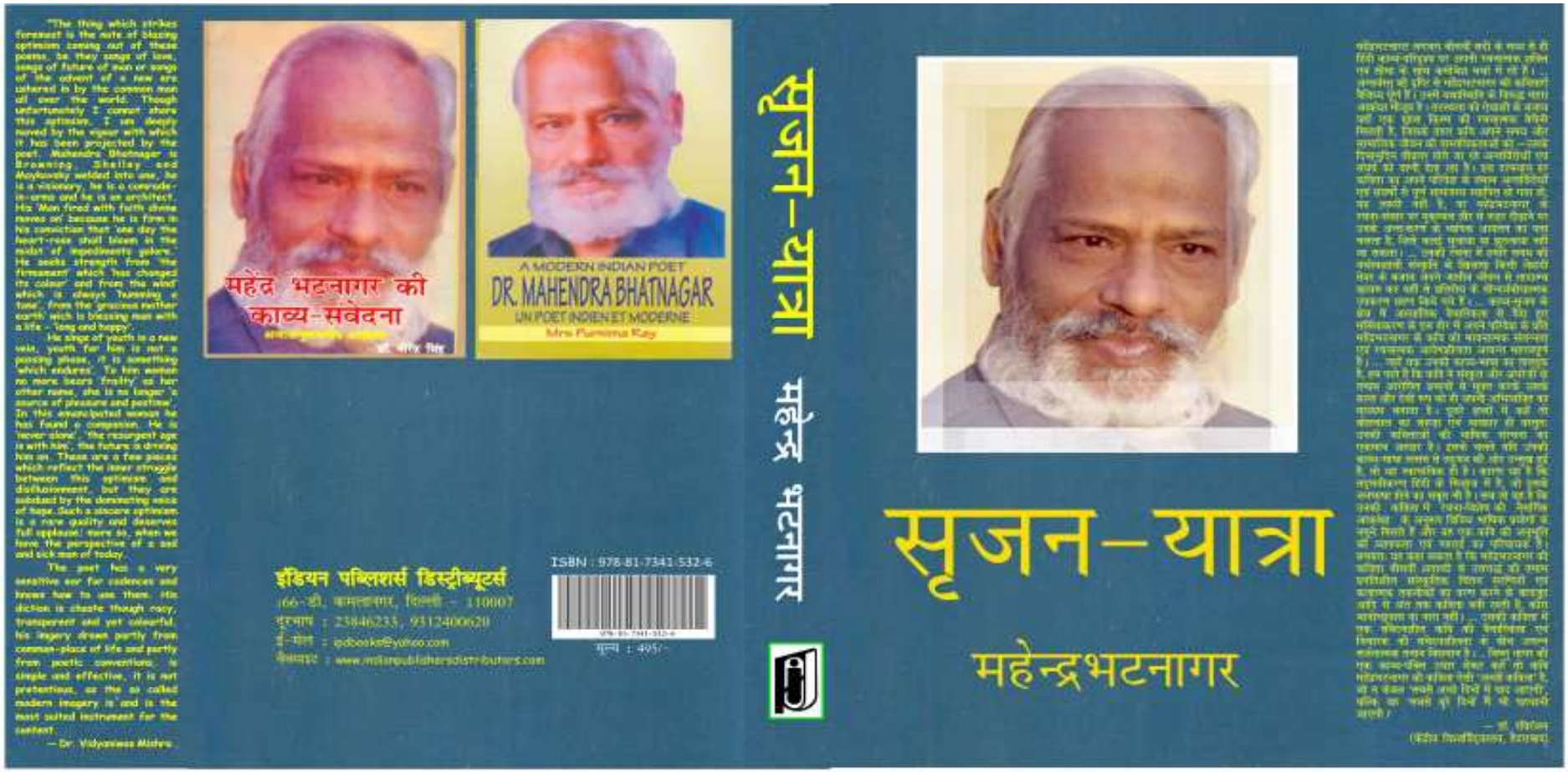

"The thing which strikes foremost is the note of blazing optimism coming out of these poems, be they songs of love, songs of future of man or songs of the advent of a new era ushered in by the common man all over the world. Though unfortunately I cannot share this optimism, I am deeply moved by the vigour with which it has been projected by the poet. Mahendra Bhatnagar is Browning, Shelley and Mayakovsky welded into one, he is a visionary, he is a comrade-in-arms and he is an architect. His 'Man fired with faith divine moves on' because he is firm in his conviction that 'one day the heart-rose shall bloom in the midst of impediments galore'. He seeks strength from 'the firmament' which 'has changed its colour' and from the wind' which is always 'humming a tune', from the 'gracious mother earth' which is blessing man with a life - 'long and happy'.
He sings of youth in a new vein, youth for him is not a passing phase, it is something 'which endures'. To him woman no more bears 'frailty' as her other name, she is no longer 'a source of pleasure and pastime'. In this emancipated woman he has found a companion. He is 'never alone', 'the resurgent age is with him', the future is driving him on. There are a few pieces which reflect the inner struggle between this optimism and disillusionment, but they are subdued by the dominating voice of hope. Such a sincere optimism is a rare quality and deserves full applause; more so, when we have the perspective of a sad and sick man of today.
The poet has a very sensitive ear for cadences and knows how to use them. His diction is chaste though racy, transparent and yet colourful. His imagery drawn partly from common-place of life and partly from poetic conventions, is simple and effective, it is not pretentious, as the so called modern imagery is' and is the most suited instrument for the content.
— Dr. Vidyaniwas Mishra.
महेंद्र भटनागर की
काव्य-संवेदना
A MODERN INDIAN POET
DR. MAHENDRA BHATNAGAR
UN POETE INDIEN ET MODERNE
Mrs Purnima Ray
इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स
166-डी, कमलानगर, दिल्ली - 110007
दूरभाष : 23846233, 9312400620
ई-मेल : ipdbooks@yahoo.com
वेबसाइट : www.indianpublishersdistributors.com
ISBN : 978-81-7341-532-6
मूल्य : 495/-
सृजन-यात्रा
महेन्द्र भटनागर
सृजन-यात्रा
महेन्द्रभटनागर